मूल्य: ₹50 जुलाई–अगस्त 2026 आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

फल फूल

भाकृअनुप ICAR

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

भाकृअनुप के 98वें स्थापना दिवस के अवसर पर

'जैव विविधता विशेषांक'

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

कृषि परिवर्तन के माध्यम से स्वस्थ भारत की नई पहल

भारत में स्वास्थ्य और कृषि दो ऐसे क्षेत्र हैं, जिनका आमजन के जीवन, पोषण और समग्र विकास से सीधा संबंध है। लंबे समय तक कृषि का मुख्य उद्देश्य केवल खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाना माना जाता रहा, जबकि स्वास्थ्य क्षेत्र रोगों के उपचार और नियंत्रण पर केंद्रित रहा। बदलती जीवनशैली, कुपोषण, बढ़ते असंचारी रोगों तथा पोषण संबंधी चुनौतियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए कृषि और स्वास्थ्य के बीच समन्वित दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। इसी सोच को साकार रूप देने के लिए भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) ने संयुक्त रूप से 'सेहत' (Science Excellence for Health through Agricultural Transformation) कार्यक्रम प्रारंभ किया है। यह पहल कृषि, पोषण और स्वास्थ्य के बीच मजबूत संबंध स्थापित करते हुए भारत को एक स्वस्थ, पोषित और सशक्त राष्ट्र बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

भारत आज स्वास्थ्य संबंधी दोहरी चुनौतियों का सामना कर रहा है। एक ओर कुपोषण, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी तथा बच्चों और महिलाओं में पोषण असंतुलन जैसी समस्याएं मौजूद हैं, वहीं दूसरी ओर मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मोटापा और कैंसर जैसे जीवनशैली आधारित असंचारी रोग तेजी से बढ़ रहे हैं। इन दोनों चुनौतियों का समाधान केवल चिकित्सा सेवाओं से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए ऐसी खाद्य एवं कृषि प्रणालियों की आवश्यकता है जो लोगों को संतुलित, सुरक्षित और पोषणयुक्त आहार उपलब्ध करवा सकें।

इसी उद्देश्य से 'सेहत' कार्यक्रम को मिशन मोड में विकसित किया गया है। इसका लक्ष्य कृषि क्षेत्र में विकसित वैज्ञानिक उपलब्धियों और नवाचारों को जनस्वास्थ्य के बेहतर परिणामों में परिवर्तित करना है। यह पहल उपचारात्मक स्वास्थ्य सेवा की अपेक्षा निवारक स्वास्थ्य सेवा को अधिक महत्व देती है। इसका मूल विचार यह है कि यदि लोगों को गुणवत्तापूर्ण, पोषक एवं स्वास्थ्यवर्धक आहार उपलब्ध करवाया जाए तो अनेक रोगों की रोकथाम प्रारंभिक स्तर पर ही संभव हो सकती है।

'सेहत' को भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था में एक ऐतिहासिक कदम माना जा रहा है। पिछले एक दशक में भारत केवल रोगों के उपचार पर आधारित दृष्टिकोण से आगे बढ़कर निवारक, समग्र और जनकेंद्रित स्वास्थ्य मॉडल की ओर अग्रसर हुआ है। इस परिवर्तन में अनुसंधान, नवाचार और साक्ष्य आधारित नीति निर्माण की महत्वपूर्ण भूमिका है। 'सेहत' इसी परिवर्तनकारी सोच का परिणाम है, जो विभिन्न क्षेत्रों के बीच सहयोग और समन्वय को नई दिशा प्रदान करता है।

केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने भी कृषि और स्वास्थ्य के गहरे संबंध को रेखांकित करते हुए कहा कि स्वस्थ नागरिक ही किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति होते हैं। इन्होंने इस बात पर बल दिया कि आहार केवल पेट भरने का साधन नहीं, बल्कि स्वास्थ्य और रोग निवारण का महत्वपूर्ण माध्यम भी है। यदि कृषि उत्पादन को पोषण संबंधी आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित किया जाए तो आहार स्वयं दवा का कार्य कर सकता है।

'सेहत' कार्यक्रम पांच प्रमुख प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर केंद्रित है। पहला क्षेत्र जैव संवर्धित (बायोफोर्टिफाइड) और पोषक तत्वों से समृद्ध फसल किस्मों का विकास एवं मूल्यांकन है। इन फसलों में आयरन, जिंक, प्रोटीन तथा अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होती है, जो कुपोषण और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने में सहायक हो सकती हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र एकीकृत कृषि प्रणालियों को बढ़ावा देना है। ऐसी प्रणालियां फसल, पशुपालन, बागवानी, मत्स्य पालन तथा अन्य कृषि गतिविधियों को एक साथ जोड़ती हैं। इससे न केवल किसानों की आय में वृद्धि होती है, बल्कि आहार की विविधता और पोषण गुणवत्ता में भी सुधार होता है। साथ ही कृषि प्रणाली अधिक टिकाऊ और जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल बनती है।

विशेष

इस कार्यक्रम की एक बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल अनुसंधान तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि नीति निर्माण और क्रियान्वयन के लिए भी ठोस आधार तैयार करेगा। कृषि और स्वास्थ्य क्षेत्रों के वैज्ञानिकों, नीति निर्माताओं तथा अन्य हितधारकों के बीच सहयोग को बढ़ावा देकर यह कार्यक्रम ऐसे मॉडल विकसित करेगा जिन्हें राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जा सके। इसके अंतर्गत प्राप्त आंकड़े और वैज्ञानिक प्रमाण भविष्य की नीतियों तथा कार्यक्रमों को दिशा देने में सहायक होंगे। यह पहल किसानों, उपभोक्ताओं, वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं को एक साझा मंच पर लाकर समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

सेहत से समृद्धि की राह

तीसरा क्षेत्र कृषि श्रमिकों के व्यावसायिक स्वास्थ्य से जुड़ा है। कृषि कार्यों के दौरान रसायनों के संपर्क, अत्यधिक श्रम, गर्मी तथा अन्य जोखिमों के कारण श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। 'सेहत' कार्यक्रम इन जोखिमों की पहचान कर उनके समाधान हेतु वैज्ञानिक एवं साक्ष्य आधारित रणनीतियों को विकसित करेगा।

चौथा क्षेत्र असंचारी रोगों की रोकथाम और प्रबंधन से संबंधित है। वर्तमान समय में मधुमेह, मोटापा, उच्च रक्तचाप और हृदय रोग जैसे रोगों तेजी से बढ़ रहे हैं। इनके नियंत्रण के लिए पोषण संपन्न फसलों, कार्यात्मक खाद्य उत्पादों तथा स्वस्थ आहार पद्धतियों को बढ़ावा दिया जाएगा। इससे लोगों को स्वस्थ जीवनशैली अपनाने में सहायता मिलेगी।

पांचवां और अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र 'वन हेल्थ' अवधारणा को सुदृढ़ बनाना है। यह अवधारणा मानव, पशु और पर्यावरणीय स्वास्थ्य को एक-दूसरे से जुड़ा हुआ मानती है। कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए इन तीनों क्षेत्रों के बीच समन्वित दृष्टिकोण आवश्यक है। 'सेहत' कार्यक्रम एकीकृत निगरानी, अनुसंधान और निदान प्रणाली के माध्यम से इस दिशा में कार्य करेगा। ■

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी

वर्ष: 47, अंक: 4, जुलाई-अगस्त 2026

संपादन सलाहकार समिति

1. **डॉ. संजय कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
उप महानिदेशक (बागवानी विज्ञान)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
2. **डॉ. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
परियोजना निदेशक (कृज्ञाप्रनि)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
3. **डॉ. राजेश कुमार** — **सदस्य**
निदेशक,
भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश
4. **डॉ. बृजेश सिंह** — **सदस्य**
निदेशक,
भाकृअनुप-केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान,
शिमला, हिमाचल प्रदेश
5. **डॉ. बिकाश दास** — **सदस्य**
निदेशक,
भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र,
मुशहरी, मुजफ्फरपुर, बिहार
6. **डॉ. विनय भारद्वाज** — **सदस्य**
निदेशक,
भाकृअनुप-राष्ट्रीय बीज मसाला अनुसंधान केंद्र,
तबीजी फार्म, ब्यावर रोड, अजमेर, राजस्थान
7. **डॉ. ओम प्रकाश अवस्थी** — **सदस्य**
प्रमुख, फल एवं बागवानी प्रौद्योगिकी प्रभाग,
भाकृअनुप-भाकृअनुसं,
पूसा, नई दिल्ली
8. **प्रो. राजेश्वर सिंह चंदेल** — **सदस्य**
कुलपति,
डॉ. वाई.एस. परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय,
नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश
9. **डॉ. डी. आर. सिंह** — **सदस्य**
कुलपति,
बिहार कृषि विश्वविद्यालय,
सबौर, भागलपुर, बिहार
10. **श्री हिमांशु मिश्रा** — **सदस्य**
कृषि पत्रकार
11. **लेफ्टिनेंट कर्नल सुभाष देसवाल (सेवानिवृत्त)** — **सदस्य**
प्रगतिशील किसान
12. **डॉ. अंजनी कुमार झा** — **सदस्य**
प्रधान वैज्ञानिक (कृज्ञाप्रनि)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
13. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
संपादक, हिंदी संपादकीय एकक (कृज्ञाप्रनि)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल

संपादक
सुनीता अरोड़ा

संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 250.00
विशेषांक : रु. 200.00

E-mail : phalphul@gmail.com

विषय सूची

कृषि जैव विविधता: टिकाऊ कृषि और खाद्य सुरक्षा
– **अनुराधा अग्रवाल**

प्रसंस्करण — 4
गौण बागवानी फसलों के मूल्यवर्धित उत्पाद
संजय कुमार सिंह, पी. सी. त्रिपाठी, वी.बी. पटेल, अंजनी कुमार झा आर. बी. तिवारी **और** करुणाकरण जी.

मिठास — 10
गुणों से भरपूर केले की विविध प्रजातियां
एस. बाकियारणी, एम.एस. सरस्वती, आर. सुधा, पी. दुरई **और** आर. सेल्वराजन

उपयोगिता — 13
पूर्वी भारत में बीजू आम की विविधता का संरक्षण
संजय कुमार सिंह, अंजू बाजपेयी **और** टी. दामोदरन

सदाबहार — 16
लीची की रंग-बिरंगी दुनिया और जैव विविधता का संरक्षण
सुनील कुमार, अभय कुमार, बिकास दास, अशोक धाकड़, रोहित कुमार **और** जीतेन्द्र कुमार

अनूठा — 18
विविधता से भरपूर भौगोलिक संकेतक फल
प्रकाश पाटिल, भूपेन्द्र सागोरे, बृजेश कुमार यादव **और** वाणी एन. यू.

गुणकारी — 24
पोषण से भरपूर शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रीय फल
अरविंद कुमार सिंह, डी. एस. मिश्रा, जगदीश राणे **और** आनंद साहिल

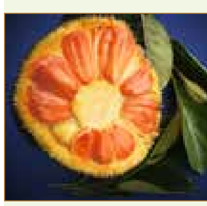
विशिष्ट — 31
कटहल की उन्नत किस्मों-सिद्दू और शंकरा से बढ़ती समृद्धि
करुणाकरण जी., एम. आर. दिनेश, कानुप्रिया, सी. अरिवलगन, एम. हर्ष कुमार, एच. वी. प्रीति सिंह, प्रीति पी., रंजीथा के. **और** रुचिता टी.

पोषण — 35
अल्प दोहित सब्जियां एवं आनुवंशिक संसाधन विविधता
राजेश कुमार **और** राकेश कुमार दुबे

धरोहर — 40
सामुदायिक बीज बैंक द्वारा जैव विविधता का सशक्तिकरण
निखिल ठाकुर, जसदीप कौर, दीपा शर्मा **और** विनीत शर्मा

विषय सूची

पारिस्थितिकी 42

नवग्रह वाटिका-संस्कृति और पर्यावरण का समन्वित उद्यान

नीलम ठाकुर **और** शबनम

आत्मनिर्भरता 44

विदेशी सब्जियों की समन्वित खेती से मिली सफलता

भूपेन्द्र सिंह खड़ायत, मुक्ता नैनवाल, उमा नौलिया **और** सी. तिवारी

संपदा 46

फल फसलों की विविधता से पोषण और वृद्धि

एकता सिंह, निखिल मौर्या **और** अंकिता यादव

सफलता 49

एप्पल बेर की उन्नत खेती से आत्मनिर्भरता

द्वारका **और** निशा चढ़ार

आधी दुनिया 51

टिकाऊ कृषि की आधारशिला हैं महिला कृषक

प्रियंका चौधरी, रवि प्रकाश, निर्मल पाण्डेय **और** प्रीति उपाध्याय

जानकारी 54

जुलाई-अगस्त के मुख्य बागवानी कार्य

हरे कृष्ण, मंजूनाथ टी गौड़ा, अरविंद कुमार सिंह, अनूप प्रताप सिंह **और** शुभम कुमार तिवारी

आवरण-II

सेहत मिशन

कृषि परिवर्तन के माध्यम से स्वस्थ भारत की नई पहल

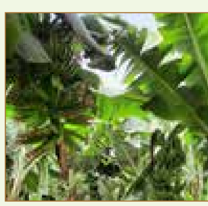

आवरण-III

नवाचार

- **केले के छिलकों से तैयार जैव प्लास्टिक, पर्यावरण संरक्षण में कारगर**
- **शुष्क क्षेत्रों की नई पहचान बन रहा ड्रैगन फ्रूट**

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

निदेशक की कलम से

कृषि जैव विविधताः टिकाऊ कृषि और खाद्य सुरक्षा

पृथ्वी पर जीवन की समृद्धि और स्थिरता का मूल आधार जैव विविधता है। जैव विविधता का अर्थ है पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी प्रकार के जीव-जंतु, वनस्पतियां, सूक्ष्मजीव और उनके पारिस्थितिक तंत्रों की विविधता। यह मानव जीवन, कृषि, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक विकास की आधारशिला भी है। भारत, विश्व के उन चुनिंदा देशों में शामिल है जिन्हें 'मेगा जैव विविधता' संपन्न देश कहा जाता है। हिमालय की पर्वतमालाओं से लेकर पश्चिमी घाटों तक, सुंदरवन के मैंग्रोव वनों से लेकर थार मरूस्थल तक, देश में अनेक प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र मौजूद हैं। यही कारण है कि यहां हजारों प्रकार के पेड़-पौधे, पक्षी, पशु और सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं। यह विविधता न केवल प्राकृतिक धरोधर है, बल्कि कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की भी महत्वपूर्ण पूंजी है।

कृषि क्षेत्र में जैव विविधता का विशेष महत्व है। विभिन्न प्रकार की फसलें, स्थानीय बीज, परागण करने वाले कीट, केंचुए तथा अन्य लाभकारी जीव कृषि उत्पादन को स्थिर और टिकाऊ बनाते हैं। परंपरागत कृषि प्रणालियों में विविध फसलों की खेती से मृदा की उर्वरता बनी रहती है और कीट/रोगों का प्रकोप भी कम होता है। लेकिन आधुनिक कृषि में संकर किस्मों पर बढ़ती निर्भरता और रासायनिक संसाधनों के उपयोग ने कृषि जैव विविधता को नुकसान पहुंचाया है। इसका परिणाम यह है कि कई पारंपरिक फसल किस्में और स्थानीय बीज विलुप्त होने के कगार पर हैं। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय और पारंपरिक किस्में बेहतर अनुकूलन क्षमता के कारण कृषि को स्थिरता प्रदान कर सकती हैं। इसलिए बीज संरक्षण, सामुदायिक बीज बैंक और देसी फसलों के संर्वधन को बढ़ावा देना समय की आवश्यकता है।

जैव विविधता का संरक्षण केवल सरकारों या वैज्ञानिक संस्थानों की जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि इसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण है। वृक्षारोपण, जल संरक्षण, रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग में कमी, स्थानीय प्रजातियों के संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग से इस दिशा में सकारात्मक योगदान दिया जा सकता है। किसानों को भी प्राकृतिक खेती, जैविक खेती, फसल विविधीकरण तथा देसी बीजों के संरक्षण को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसमें कृषि में स्थानीय प्रजातियों, पारंपरिक बीजों और टिकाऊ खेती के महत्व पर जोर देना होगा ताकि खेती जैव विविधता का संरक्षण भी कर सके।

अंततः जैव विविधता केवल प्रकृति की संपदा नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के भविष्य की सुरक्षा का आधार है। यही सतत विकास, खाद्य सुरक्षा और स्वस्थ भविष्य की कुंजी है। यदि हम कृषि जैव विविधता को संरक्षित और समृद्ध बनाने में सफल होते हैं, तो न केवल कृषि क्षेत्र अधिक सशक्त बनेगा, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और समृद्ध भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

गौण बागवानी फसलों के मूल्यवर्धित उत्पाद

संजय कुमार सिंह[1], **पी. सी. त्रिपाठी**[1], **वी.बी. पटेल**[1], **अंजनी कुमार झा**[2]
आर. बी. तिवारी[3] और **करुणाकरण जी.**[3]

गौण बागवानी फसलें पोषण और स्वास्थ्यवर्धक तत्वों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। वैश्विक स्तर पर बढ़ती खाद्य और पोषण संबंधी चुनौतियों के समाधान में इन्हें आहार में शामिल करना एक प्रभावी विकल्प हो सकता है। ये फसलें एस्कॉर्बिक एसिड, खनिज तत्व, फ्लेवोनोइड्स, कैरोटीनॉइड्स तथा अन्य फाइटोकेमिकल्स से भरपूर होती हैं। फाइटोकेमिकल्स जैविक रूप से सक्रिय यौगिक हैं, जिनमें स्वास्थ्य संरक्षक गुण पाए जाते हैं। इनमें एंटीऑक्सीडेंट, सूजनरोधी, उत्परिवर्तन रोधी, कैंसररोधी और बुढ़ापारोधी गतिविधियां शामिल हैं। इसी कारण आंवला, जामुन, अनार, कोकम और करेला जैसी अनेक फसलों का उपयोग विभिन्न रोगों की रोकथाम में हर्बल स्रोत के रूप में भी किया जाता है। आज बदलती जीवनशैली, पोषण असंतुलन और बढ़ती स्वास्थ्य समस्याओं के बीच ऐसे खाद्य स्रोतों की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जो पोषक होने के साथ स्वास्थ्यवर्धक भी हों। इस दिशा में गौण बागवानी फसलें एक प्रभावी विकल्प के रूप में उभर रही हैं। इन फसलों के प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धित उत्पादों के माध्यम से पोषण सुरक्षा, स्वास्थ्य संवर्धन और ग्रामीण उद्यमिता को नई दिशा दी जा सकती है।

गौण बागवानी फसलें पोषक तत्वों से भरपूर, आर्थिक रूप से किफायती तथा टिकाऊ आहार को बढ़ावा देने वाली हैं। इन्हें प्रसंस्करित खाद्य उत्पादों के पोषण संवर्धन हेतु कार्यात्मक सामग्री के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। इनमें से कई फसलें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा से समृद्ध होती हैं, फिर भी नियमित आहार में इनका उपयोग सीमित है। स्वस्थ आहार के लिए आहार विविधता अत्यंत आवश्यक है और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध इन कम उपयोग वाली फसलों का समावेश स्वास्थ्य सुधार की एक सरल एवं प्रभावी रणनीति हो सकती है।

इन फसलों से अनेक मूल्यवर्धित उत्पाद विकसित किए गए हैं, जो सुविधाजनक होने के साथ लंबी भंडारण अवधि वाले भी हैं। फार्मास्यूटिकल एवं प्रसंस्करण उद्योगों में इन फसलों की अपार संभावनाएँ हैं। पोषक तत्वों से भरपूर ऐसे विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पाद, जिनमें उद्यमिता की व्यापक संभावनाएँ निहित हैं इस प्रकार हैं:

कोकम-आंवला कैंडी: यह कैंडी एक पौष्टिक मूल्यवर्धित उत्पाद है, जिसमें कोकम और आंवला दोनों के स्वास्थ्यवर्धक गुण मौजूद होते हैं।

[1]बागवानी विज्ञान विभाग, भाकृअनुप परिषद, कृषि अनुसंधान भवन-2, पूसा, नई दिल्ली, [2]कृज्ञाप्रनि-भाकृअनुप, कृषि अनुसंधान भवन -1, पूसा, नई दिल्ली, [3]भाकृअनुप-आईआईएचआर, हेसरघट्टा लेक पोस्ट, बेंगलुरु

कोकम एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होता है तथा पाचन में सहायक माना जाता है, जबकि आंवला विटामिन 'सी' का अच्छा स्रोत है। इस उत्पाद में आंवला के टुकड़ों को कोकम के रस में भिगोकर ऑस्मोसिस विधि से तैयार किया जाता है। इसके बाद टुकड़ों को गर्म हवा वाले ड्रायर में सुखाया जाता है, जिससे कैंडी का स्वाद बेहतर हो जाता है और कसैलापन कम हो जाता है।

निर्माण प्रक्रिया में फल चयन, सफाई, धुलाई, ब्लांचिंग, चीनी घोल में भिगोना तथा सुखाने जैसी सरल प्रक्रियाएं शामिल हैं। तैयार कैंडी को पाउच में पैक कर लगभग एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह उत्पाद पोषण के साथ-साथ प्रसंस्करण एवं लघु उद्यमिता के लिए भी अच्छा अवसर प्रदान करता है।

कोकम फ्लेक्स

यह एक उपयोगी मूल्यवर्धित उत्पाद है, जिसे कोकम फल से तैयार किया जाता है। कोकम का उपयोग सामान्यतः ताजे फल के रूप में कम किया जाता है, लेकिन पश्चिमी घाट क्षेत्र में इसका प्रयोग लंबे समय से स्क्वैश, सिरप तथा विभिन्न व्यंजनों में खट्टापन लाने वाले उत्पाद के रूप में किया जाता रहा है।

कोकम फ्लेक्स तैयार करने के लिए फलों का चयन, सफाई, धुलाई, गूदा एवं बीज निकालना तथा टुकड़े करना जैसी सरल प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं। इसके बाद टुकड़ों को धूप में अथवा गर्म हवा वाले ड्रायर में सुखाया जाता है। सुखाए गए कोकम फ्लेक्स को लचीले पाउच में पैक किया जाता है, जिससे इन्हें कमरे के तापमान पर लगभग एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह उत्पाद प्रसंस्करण एवं लघु उद्यमिता के लिए भी अच्छा अवसर प्रदान करता है।

स्वादिष्ट कोकम फ्लेक्स

करौंदा कैंडी: करौंदा, भारत का एक पारंपरिक ग्रीष्मकालीन फल है, जिसका उपयोग अचार, जैम और मुरब्बा बनाने में व्यापक रूप से किया जाता है। यह फल कई स्वास्थ्यवर्धक गुणों से भरपूर होता है। कच्चे करौंदे का स्वाद खट्टा और कसैला होता है, जबकि पकने पर इसका रंग गहरा लाल या बैंगनी हो जाता है तथा स्वाद अधिक मीठा और आकर्षक बन जाता है।

बड़े आकार वाले करौंदा फलों का उपयोग कैंडी निर्माण के लिए उपयुक्त माना जाता है। कैंडी तैयार करते समय इसमें कोकम के रस का उपयोग किया जाता है, जिससे उत्पाद का रंग आकर्षक लाल हो जाता है और स्वाद भी बेहतर बनता है। कोकम का रस करौंदे में स्वाद एवं रंग भरने के लिए एक उत्कृष्ट माध्यम माना जाता है।

यह कैंडी स्वादिष्ट होने के साथ पौष्टिक भी होती है तथा इसे स्वस्थ नाश्ते के रूप में उपयोग किया जा सकता है। साथ ही, यह प्रसंस्करण आधारित उद्यमिता के लिए भी एक अच्छा विकल्प है।

मलायन फल कैंडी: मलायन फल एक रसीला, सुगंधित एवं अधिक खाद्य भाग वाला फल है, लेकिन इसका स्वाद अपेक्षाकृत फीका होने तथा जल्दी खराब होने के कारण इसका उपयोग सीमित रहता है। इसकी स्पंजी बनावट इसे प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त बनाती है। मलायन फल कैंडी तैयार करने के लिए फल

न्यूट्रीजेली

बैंगनी गूदे वाले शकरकंद (किस्म: भू-कृष्ण) तथा नारंगी गूदे वाले शकरकंद (किस्म: भू-सोना) से एंथोसायनिन एवं बीटा-कैरोटीन से भरपूर न्यूट्री-जेली विकसित की गई है। बीटा-कैरोटीन युक्त न्यूट्रीजेली के मानकीकरण हेतु नारंगी गूदे वाली किस्म 'भू-सोना' के रस का उपयोग कर विभिन्न मिश्रणों का परीक्षण किया गया। अध्ययन में 1000 मि.ली. शकरकंद रस, 650 ग्राम चीनी, 0.5% साइट्रिक एसिड तथा 13 ग्राम पेक्टिन वाला मिश्रण सबसे उपयुक्त पाया गया। तैयार न्यूट्रीजेली में नमी 27.29%, टीएसएस 67.53° ब्रिक्स, टाइट्रेबल अम्लता 0.53%, तथा बीटा-कैरोटीन 7.20 मि.ग्रा./100 ग्राम पाया गया। इसकी कुल स्वीकार्यता 8.67 दर्ज की गई। उत्पाद की भंडारण स्थिरता का परीक्षण सामान्य कमरे के तापमान तथा रेफ्रिजरेटर तापमान पर 0, 30, 60 एवं 90 दिनों के अंतराल पर किया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि यह बीटा कैरोटीन समृद्ध न्यूट्रीजेली दोनों परिस्थितियों में 90 दिनों तक सुरक्षित एवं उपयोग योग्य बनी रहती है।

के टुकड़ों को कोकम के रस में ऑस्मोसिस विधि से भिगोया जाता है, जिससे उत्पाद में आकर्षक गहरा लाल रंग, बेहतर स्वाद तथा दोनों फलों के पोषक गुण समाहित हो जाते हैं। इसके बाद टुकड़ों को गर्म हवा वाले ड्रायर में सुखाया जाता है।

निर्माण प्रक्रिया में फल चयन, सफाई, धुलाई, ब्लांचिंग, टुकड़े करना, चीनी घोल में भिगोना तथा नियंत्रित तापमान पर सुखाना जैसी सरल प्रक्रियाएं शामिल हैं। तैयार कैंडी को लचीले पाउच में पैक किया जाता है और इसे कमरे के तापमान पर लगभग एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह उत्पाद स्वाद, पोषण और प्रसंस्करण आधारित उद्यमिता की दृष्टि से एक अच्छा विकल्प है।

मालाबार इमली फ्लेक्स: मालाबार इमली के सूखे फ्लेक्स का उपयोग केरल और कर्नाटक के पारंपरिक व्यंजनों में खट्टापन लाने के लिए इमली या नीबू के विकल्प के रूप में किया जाता है। यह फल अल्फा हाइड्रॉक्सी साइट्रिक एसिड, गार्सिनोल तथा जैंथोन जैसे महत्वपूर्ण यौगिकों से भरपूर होता है, जिनके कई पोषण एवं औषधीय लाभ हैं।

इससे फ्लेक्स, पाउडर, सिरका तथा अन्य मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किए जाते हैं। विशेष रूप से सूखे फ्लेक्स की मांग मछली और पोर्क करी में उपयोग के कारण तटीय क्षेत्रों में अधिक रहती है। फ्लेक्स निर्माण के लिए फलों का चयन, सफाई, धुलाई, गूदा एवं बीज निकालना तथा टुकड़ों में काटना जैसी सरल प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं। इसके बाद टुकड़ों को धूप अथवा गर्म हवा वाले ड्रायर में सुखाया जाता है। तैयार फ्लेक्स को लचीले पाउच में पैक किया जाता है और इन्हें कमरे के तापमान पर लगभग एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

मलायन फल कैंडी

कटहल बिस्किट: कटहल कुकीज (अर्का जैकीज) भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु द्वारा विकसित एक पौष्टिक मूल्यवर्धित उत्पाद है। यह कुकीज कटहल के बीजों के पाउडर और मशरूम का उपयोग करके तैयार की जाती है।

सामान्यत: बिस्किटों में फाइबर बढ़ाने के लिए अनाज के चोकर का उपयोग किया जाता है, लेकिन इस तकनीक में उससे अधिक स्वास्थ्यवर्धक विकल्प के रूप में उबले हुए कटहल के बीजों के पाउडर का उपयोग किया गया है। कटहल के बीजों के पाउडर में लगभग 2.0% क्रूड फाइबर के साथ-साथ खनिज तत्व एवं फाइटोकेमिकल्स प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

सामान्य बिस्किटों में केवल 5-10% मैदा बदला जाता है, जबकि इस तकनीक में लगभग 40% मैदा को उबले हुए कटहल के बीजों के पाउडर, फलों के पाउडर तथा मशरूम से प्रतिस्थापित किया गया है। इसके बावजूद इसका स्वाद उपभोक्ताओं द्वारा काफी पसंद किया गया है। यह उत्पाद कैल्शियम, मैग्नीशियम और आयरन जैसे महत्वपूर्ण खनिजों से भरपूर है तथा पोषणयुक्त खाद्य उत्पादों और प्रसंस्करण आधारित उद्यमिता के लिए एक अच्छा विकल्प प्रस्तुत करता है।

पोषण से भरपूर कटहल बिस्किट

जैकोलेट (अर्का जैकोलेट): यह भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु द्वारा विकसित एक नवाचार आधारित मूल्यवर्धित उत्पाद है। यह चॉकलेट कटहल के बीजों के पाउडर और मशरूम से तैयार की जाती है।

ताजे कटहल में बीजों की मात्रा लगभग 12-23% होती है, जिन्हें सामान्यत: अनुपयोगी समझकर फैंक दिया जाता है। जबकि कटहल के बीजों में 60-65% स्टार्च (RS&Type-2), लगभग 2% क्रूड फाइबर तथा अनेक फाइटोकेमिकल्स पाए जाते हैं, जिनमें एंटीबायोटिक और कैंसर-रोधी गुण मौजूद होते हैं। इस तकनीक में कटहल के बीजों के पाउडर को मशरूम, तिल, मक्खन आदि प्राकृतिक सामग्री के साथ निश्चित अनुपात में मिलाकर चॉकलेट की परत से ढका जाता है। तैयार उत्पाद स्वादिष्ट होने के साथ अत्यंत पौष्टिक भी होता है।

जैकोलेट में लगभग 5.0–6.0% प्रोटीन पाया जाता है। इसमें फैट और कैलोरी की मात्रा कम, जबकि फाइबर और एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा अधिक होती है। यह उत्पाद सभी आयु वर्ग के लोगों के लिए उपयुक्त माना जाता है तथा पोषणयुक्त खाद्य उत्पादों एवं उद्यमिता के क्षेत्र में अच्छी संभावनाएं रखता है।

रेडी टू ईट कटहल करी: कच्चे कटहल की करी एक लोकप्रिय भारतीय व्यंजन है, जिसका स्वाद और बनावट कई मायनों में मांसाहारी करी जैसी प्रतीत होती है। हालांकि, कच्चे कटहल की उपलब्धता सीमित समय के लिए होने के कारण उपभोक्ता इसका आनंद केवल मौसम विशेष में ही ले पाते हैं।

इसी समस्या के समाधान के रूप में "रेडी टू ईट कटहल करी" तकनीक विकसित की गई है। इसमें रेसिपी का मानकीकरण, रिटॉर्ट प्रोसेसिंग तकनीक द्वारा सुरक्षित प्रसंस्करण तथा स्वाद एवं गुणवत्ता का वैज्ञानिक मूल्यांकन शामिल है। यह तकनीक उत्पाद को बिना किसी संरक्षक के 18 महीने से अधिक की भंडारण क्षमता प्रदान करती है तथा लंबे समय तक इसकी गुणवत्ता और स्वाद को बनाए रखती है।

जामुन बार: जामुन एक छोटा लेकिन अत्यंत पौष्टिक फल है, जिसकी बाहरी परत गहरे बैंगनी से नीले-काले रंग की होती है। इसमें एंथोसायनिन और फेनोलिक जैसे एंटीऑक्सीडेंट यौगिक प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसके बीजों का पाउडर रक्त एवं मूत्र में शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक माना जाता है।

जामुन के गूदे का उपयोग विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पादों में किया जा रहा है। पास्ता में जामुन गूदा मिलाने से उसके पोषक तत्वों और बायोएक्टिव यौगिकों में वृद्धि होती है, साथ ही उत्पाद को प्राकृतिक आकर्षक रंग भी प्राप्त होता है।

जामुन जूस और जामुन फ्रूट बार विशेष रूप से लोकप्रिय मूल्यवर्धित उत्पाद हैं। जामुन बार स्वादिष्ट होने के साथ एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होता है तथा स्वास्थ्यवर्धक स्नैक के रूप में उपयोग किया जा सकता है। यह उत्पाद पोषण संवर्धन एवं प्रसंस्करण आधारित उद्यमिता के लिए भी अच्छी संभावनाएं प्रदान करता है।

काजू फल फ्रूट बार: काजू फल एक मौसमी एवं अत्यधिक नाशवान फल है, जिसका उपयोग खाद्य उद्योगों में अभी भी सीमित स्तर पर किया जाता है। इसकी तुलना में काजू गिरी का उपयोग अधिक होता है। काजू फल के बेहतर उपयोग के लिए इससे फ्रूट बार विकसित किया गया, जिसमें काजू फल के गूदे को अमरूद के गूदे के साथ मिलाया गया।

अध्ययन में पाया गया कि 75% काजू फल गूदा और 25% अमरूद गूदा वाले फ्रूट बार को परीक्षकों द्वारा सबसे अधिक पसंद किया गया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि फ्रूट बार निर्माण में 60–80% तक काजू फल गूदे का उपयोग उपभोक्ता स्वीकार्यता को प्रभावित किए बिना किया जा सकता है।

काजू फल फ्रूट बार में कुल फिनोल और कुल एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि क्रमशः 241 मि.ग्रा./100 ग्राम और 93.29 मि.ग्रा./100 ग्राम पाई गई, जो इसके उच्च पोषण मूल्य को दर्शाती है। इसमें कुल राख की मात्रा 5.32% थी, जो खनिज तत्वों की अधिकता का संकेत देती है। इसके अलावा इसमें कुल कैरोटीनॉयड 0.25 मि.ग्रा. तथा प्रोटीन 2.27% पाया गया। यह फ्रूट बार पोटेशियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम, सोडियम और आयरन जैसे महत्वपूर्ण खनिजों से भी समृद्ध है तथा स्वास्थ्यवर्धक स्नैक एवं प्रसंस्करण आधारित उद्यमिता के लिए अच्छा विकल्प प्रस्तुत करता है।

सुखाए गए चेरी टमाटर: चेरी टमाटर लाइकोपीन से भरपूर होते हैं तथा इनमें प्राकृतिक शर्करा और अम्लता की मात्रा सामान्य टमाटरों की तुलना में अधिक पाई जाती है। पके हुए लाल चेरी टमाटरों का कुल घुलनशील ठोस 8–10°B तक होता है, जबकि सामान्य टमाटरों में यह 2.8–5-0°B के बीच रहता है। इनके छोटे आकार और

अर्का जैकोलेट-कटहल बीजों से तैयार पौष्टिक चॉकलेट

काजू फल पोमेस पाउडर कुकीज

अधिकांश व्यावसायिक कुकीज परिष्कृत आटे (मैदा) से बनाई जाती हैं, जबकि इस तकनीक का उद्देश्य बिना मैदा के पौष्टिक कुकीज तैयार करना था। इसके लिए काजू फल का रस निकालने के बाद बचे हुए गूदे (पोमेस) का उपयोग किया गया। काजू फल पोमेस को ट्रे ड्रायर में 60°C तापमान पर 24 घंटे तक सुखाकर उसका पाउडर तैयार किया गया। इसके बाद इस पाउडर (CAPP) को गेहूं के आटे के साथ मिलाकर कुकीज बनाई गई, जिसमें मैदा का उपयोग बिल्कुल नहीं किया गया। तैयार कुकीज का भौतिक, जैव-रासायनिक तथा संवेदी गुणों के आधार पर मूल्यांकन किया गया। इस नए मिश्रण में कच्चा प्रोटीन 6.84%, कच्ची वसा 13.3% तथा फाइबर 6.33% पाया गया। साथ ही, जिन कुकीज में 25% काजू फल पोमेस पाउडर मिलाया गया था, उन्हें परीक्षकों द्वारा सबसे अधिक पसंद किया गया।

कमलम रेडी-टू-सर्व पेय

ड्रैगन फ्रूट का गूदा स्वभाव से चिपचिपा होने के कारण इससे गूदेदार पेय तैयार करना कठिन होता है। इसी चुनौती को ध्यान में रखते हुए ऐसा रेडी-टू-सर्व पेय विकसित किया गया है, जिसमें बिना बीज वाला स्वच्छ एवं साफ रस उपयोग किया जाता है। यह पेय उपभोक्ताओं को बिना किसी कृत्रिम रंग या स्वाद के ड्रैगन फ्रूट का प्राकृतिक गुलाबी रंग और विशिष्ट स्वाद प्रदान करता है। सामान्य तापमान पर इसकी भंडारण क्षमता लगभग छह महीने होती है। इस विकसित पेय में एस्कॉर्बिक एसिड, कुल बेटालेंस तथा पॉलीफेनोल्स जैसे स्वास्थ्यवर्धक बायोएक्टिव यौगिक पाए जाते हैं, जो इसे पौष्टिक एवं आकर्षक पेय बनाते हैं।

एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर जामुन बार

अंगूर जैसी बनावट के कारण उपभोक्ताओं में इनकी विशेष लोकप्रियता है।

चेरी टमाटरों को चीनी (63%) एवं साइट्रिक एसिड (1%) के घोल में भिगोकर ऑस्मोटिक विधि से सुखाने की तकनीक विकसित की गई है। इस प्रक्रिया में टमाटरों को तब तक सुखाया जाता है, जब तक उनमें नमी की मात्रा 18-20% तक न रह जाए। तैयार उत्पाद स्वादिष्ट, आकर्षक एवं पोषणयुक्त होता है। सामान्य परिस्थितियों में इसकी भंडारण क्षमता लगभग 30 दिन पाई गई है।

शकरकंद के वैक्यूम फ्राइड चिप्स: नारंगी एवं बैंगनी गूदे वाले शकरकंद से तैयार वैक्यूम फ्राइड चिप्स एक पौष्टिक मूल्यवर्धित उत्पाद हैं। पारंपरिक तले हुए चिप्स की तुलना में इनमें फैट की मात्रा कम होती है, जबकि स्वास्थ्यवर्धक बायोएक्टिव यौगिक अधिक पाए जाते हैं। इन चिप्स में बीटा कैरोटीन की मात्रा लगभग 6.81 मि.ग्रा./100 ग्राम तथा एंथोसायनिन की मात्रा 57.44 मि.ग्रा./100 ग्राम पाई गई है, जो इन्हें पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाती है। फूड ग्रेड नाइट्रोजन पैकिंग में इनकी भंडारण क्षमता लगभग 11-12 महीने तक रहती है।

शकरकंद न्यूट्रीबार: शकरकंद के आटे को दालों, ओट्स एवं मेवों के साथ मिलाकर एक पौष्टिक रेडी-टू-ईट न्यूट्रीबार विकसित किया गया है। यह उत्पाद ऊर्जा एवं पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्यवर्धक स्नैक के रूप में उपयोगी है। इस न्यूट्रीबार में क्रूड प्रोटीन 5.37-6.80%, क्रूड फैट 21.68-28.75%, क्रूड फाइबर 1.29-2.45% तथा कार्बोहाइड्रेट 54.8-62.84% पाया गया। इसकी ऊर्जा मात्रा 467.56-505.15 किलो कैलोरी/100 ग्राम है।

खनिज तत्वों की दृष्टि से इसमें आयरन 4.52 मि.ग्रा./100 ग्राम, कैल्शियम 30 मि.ग्रा./100 ग्राम तथा मैग्नीशियम 6.06 मि.ग्रा./100 ग्राम पाया गया। यह न्यूट्रीबार कमरे के तापमान पर लगभग 6 महीने तथा रेफ्रिजरेटर में 8-9 महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

शकरकंद से बने चावल के विकल्प

शकरकंद आधारित मिश्रित आटे से "कोल्ड एक्सट्रूजन" तकनीक द्वारा चावल के विकल्प विकसित किए गए हैं। शकरकंद से तैयार इस वैकल्पिक चावल के लिए सबसे उपयुक्त मिश्रण में शकरकंद आटा 65.27%, परिष्कृत गेहूं आटा 29.72% तथा व्हे प्रोटीन कंसंट्रेट 5% रखा गया, जिसमें स्टार्च और ग्वार गम भी मिलाए गए। तैयार उत्पाद में प्रोटीन 9.61% तथा फैट और फाइबर की मात्रा प्रत्येक 0.97% पाई गई।

पकाने की गुणवत्ता के परीक्षण में फूलने का सूचकांक 2.93%, पकाने में होने वाली कमी 9.49% तथा पकाने का समय 7.96 मिनट दर्ज किया गया। इसके अतिरिक्त, 80% शकरकंद आटा एवं 20% कसावा आटे से तैयार चावल जैसे उत्पाद को भी स्वाद और बनावट की दृष्टि से बेहतर पाया गया।

निर्जलित सिंघाड़े का पाउडर युक्त इंस्टेंट जलेबी मिक्स

सिंघाड़े का उपयोग पारंपरिक भारतीय आहार में विशेष रूप से व्रत एवं धार्मिक अवसरों पर व्यापक रूप से किया जाता है। हालांकि, इसकी उपलब्धता सीमित समय के लिए ही रहती है। इसी को ध्यान में रखते हुए निर्जलित सिंघाड़े के पाउडर से "इंस्टेंट जलेबी मिक्स" विकसित करने की तकनीक तैयार की गई। इसके लिए कम लागत एवं सरल उपयोग वाली निर्जलीकरण प्रक्रिया का मानकीकरण किया गया। भंडारण अवधि के अंत तक सिंघाड़े के पाउडर के रंग में केवल हल्का परिवर्तन देखा गया, जिससे इसकी अच्छी भंडारण क्षमता का संकेत मिलता है। निर्जलित सिंघाड़े के पाउडर का उपयोग कर तैयार किए गए इंस्टेंट जलेबी मिक्स का स्वाद एवं बनावट संबंधी परीक्षणों में संतोषजनक परिणाम प्राप्त हुए। हालांकि, जलेबी अपेक्षाकृत कम कुरकुरी पाई गई, इसलिए इसके लिए आगे और मानकीकरण की आवश्यकता है।

इस उत्पाद में स्टार्च 66.50%, चीनी 8.17%, फाइबर 0.37% तथा प्रोटीन 9.45% पाया गया।

पफ्ड एक्सट्रूडेड स्नैक: शकरकंद, कसावा, मक्का एवं रागी के आटे के विभिन्न संयोजनों का उपयोग करके रेडी-टू-ईट एक्सट्रूडेड पफ्ड स्नैक विकसित किया गया। विभिन्न मिश्रणों में शकरकंद आटा 30%, कसावा आटा 30%, रागी आटा 15% तथा मक्का आटा 25% वाला संयोजन स्वाद और बनावट की दृष्टि से सबसे उपयुक्त पाया गया।

तैयार स्नैक के भौतिक-रासायनिक एवं संवेदी गुणों का अध्ययन किया गया। इसमें नमी 3.04 ग्राम, प्रोटीन 10.25 ग्राम, वसा 3.6 ग्राम, फाइबर 3.1 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट 75.25 ग्राम तथा कुल राख 4.5 ग्राम पाई गई। इसके अलावा, उत्पाद की लंबाई 2.50 सें.मी., ठोस घनत्व 0.05 ग्राम/सें.मी.³ तथा विस्तार अनुपात 4.98 दर्ज किया गया। इसकी समग्र स्वीकार्यता 8.10 पाई गई, जो उपभोक्ताओं द्वारा इसकी अच्छी पसंद को दर्शाती है।

पोषण अनाज मिश्रण: अनाज, दालों, रागी, जैव संवर्धित शकरकंद तथा सूखे मेवों के संतुलित मिश्रण से पोषण अनाज मिश्रण विकसित किए गए हैं। ये उत्पाद पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक तथा ग्लूटेन मुक्त हैं, जो सभी आयु वर्ग के लोगों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं।

इन उत्पादों को इलायची एवं वनीला फ्लेवर में विकसित किया गया है। कुल आठ प्रकार के पोषण अनाज मिश्रण किए गए हैं, जिनमें भू-कृष्ण एवं भू-सोना शकरकंद आटे का उपयोग चीनी अथवा गुड़ के साथ किया गया है।

इनमें शामिल उत्पाद हैं- चीनी के साथ भू-कृष्ण आटा (इलायची), चीनी के साथ भू-कृष्ण आटा (वनीला), गुड़ के साथ भू-कृष्ण आटा (इलायची), गुड़ के साथ भू-कृष्ण आटा (वनीला), चीनी के साथ भू-सोना आटा (इलायची), चीनी के साथ भू-सोना आटा (वनीला), गुड़ के साथ भू-सोना आटा (इलायची), तथा गुड़ के साथ भू-सोना आटा (वनीला)।

ये पोषण अनाज मिश्रण संतुलित आहार, स्वास्थ्य संवर्धन तथा प्रसंस्करण आधारित उद्यमिता के लिए अच्छी संभावनाएं प्रस्तुत करते हैं।

गौण बागवानी फसलें पोषण एवं औषधीय गुणों से भरपूर खाद्य उत्पादों, स्वास्थ्यवर्धक खाद्य उत्पादों तथा पोषक पूरक आहारों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा विभिन्न रोगों की रोकथाम एवं उपचार में इनके योगदान को विश्व स्तर पर व्यापक मान्यता प्राप्त है। स्थानीय समुदाय लंबे समय से इन फसलों का पारंपरिक रूप से उपयोग करते आ रहे हैं।

आधुनिक प्रसंस्करण तकनीकों की सहायता से इन फसलों से अनेक मूल्यवर्धित उत्पाद विकसित किए जा सकते हैं, जिनका व्यवसायीकरण ग्रामीण समुदायों के सामाजिक-आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। कम लागत वाली कई तकनीकें उपलब्ध हैं, जिन्हें अपनाकर उद्यमी एवं स्थानीय समुदाय इन फसलों का उपयोग खाद्य उत्पादों तथा लघु उद्योगों के लिए कर सकते हैं।

देश में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा आजीविका के नए अवसर सृजित करने में भी गौण बागवानी फसलों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसलिए इन उच्च मूल्य फसलों की विविधता, वितरण, उपलब्धता, पारंपरिक उपयोग, पोषण एवं औषधीय गुण, उत्पादन तकनीक, मांग-आपूर्ति, विपणन तथा संरक्षण एवं प्रबंधन को समझना आवश्यक है। यह न केवल फसल विविधीकरण को बढ़ावा देगा, बल्कि आहार विविधता और सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी सहायक सिद्ध होगा। ■

कटहल के ओस्मोड्राइड फ्लेक्स

कटहल एक लोकप्रिय फल है, लेकिन इसके बड़े आकार, जल्दी खराब होने की प्रवृत्ति तथा काटने एवं खाने योग्य भाग निकालने में कठिनाई के कारण कई उपभोक्ताओं को असुविधा होती है। सड़क किनारे खुले में बिक्री के दौरान स्वच्छता संबंधी समस्याएं भी देखने को मिलती हैं। ऐसे में ओस्मोसिस विधि से तैयार किए गए कटहल के ओस्मोड्राइड फ्लेक्स एक सुविधाजनक एवं उपयोगी विकल्प के रूप में उभर रहे हैं। ताजा कटहल में खाने योग्य गूदा पूरे फल का लगभग 30-35% होता है। ओस्मोसिस विधि से सुखाने के बाद इसके वजन में ताजे गूदे की तुलना में लगभग एक-तिहाई कमी आ जाती है। इससे परिवहन एवं पैकेजिंग लागत कम हो जाती है और उत्पाद को संभालना आसान हो जाता है। इस उत्पाद को सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों में आसानी से तैयार किया जा सकता है। इसे सूखे फल (स्नैक) के रूप में सीधे खाया जा सकता है। बच्चों, पर्वतारोहियों तथा दुर्गम क्षेत्रों में तैनात रक्षा बलों के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है, जहां भारी और जल्दी खराब होने वाले ताजे फलों को पहुंचाना कठिन होता है। लगभग 11-12 कि.ग्रा. पके कटहल से 1 कि.ग्रा. ओस्मोएयर ड्राइड फ्लेक्स तैयार किए जाते हैं तथा सामान्य परिस्थितियों में इनकी भंडारण क्षमता लगभग एक वर्ष होती है।

वुडी पेपर डिहाइड्रेटेड पाउडर

वुडी पेपर भारत के उष्णकटिबंधीय अंडमान द्वीपों में पाया जाने वाला एक विशिष्ट मसाला है। इसकी विशेषता यह है कि इसके मोटे तनों का उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है। वहीं ताजा तनों के टुकड़ों का उपयोग शाकाहारी एवं मांसाहारी व्यंजनों में स्वाद बढ़ाने के लिए किया जाता है, लेकिन इनकी भंडारण क्षमता एक सप्ताह से भी कम होती है। इस समस्या के समाधान हेतु वुडी पेपर डिहाइड्रेटेड पाउडर विकसित किया गया, जिससे इस अनोखे मसाले को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सके तथा दूरस्थ बाजारों तक उपलब्ध करवाया जा सके। तैयार उत्पाद में पिपेरिन (अल्कलॉइड) एवं फेनोलिक यौगिक जैसे बायोएक्टिव तत्व पाए गए, जो एंटीऑक्सीडेंट गुणों के लिए जाने जाते हैं। यह उत्पाद लगभग एक वर्ष तक सुरक्षित रहता है तथा आहार, सलाद और चाट आदि में विशिष्ट तीखा स्वाद प्रदान करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। 7-बिंदु मूल्यांकन पैमाने पर इस उत्पाद को 6.1 का उच्च समग्र स्वीकार्यता स्कोर प्राप्त हुआ, जो इसकी अच्छी उपभोक्ता पसंद को दर्शाता है।

गुणों से भरपूर केले की विविध प्रजातियां

एस. बाकियारणी, एम.एस. सरस्वती, आर. सुधा,
पी. दुरई और **आर. सेल्वराजन**

भारत, केले की उत्पत्ति और विविधता का एक प्रमुख केन्द्र माना जाता है। दुनिया में पाए जाने वाले म्यूसेसी कुल की लगभग 80 प्रजातियों और 162 प्रकारों में से 34 प्रकार भारत में मिलते हैं। देश में वन्य केले की सबसे अधिक विविधता पूर्वोत्तर राज्यों में पाई जाती है, जहाँ भारत की लगभग 90 प्रतिशत वन्य केला प्रजातियाँ मौजूद हैं। इसके अलावा अंडमान-निकोबार द्वीप समूह तथा पश्चिमी और पूर्वी घाट क्षेत्रों में भी केले की कई वन्य प्रजातियाँ पाई जाती हैं। म्यूसेसी कुल का एंसेटे वंश केले जैसा दिखाई देता है, इसलिए इसे 'वन्य केला' भी कहा जाता है। एंसेटे ग्लॉकम और एंसेटे सुपरबम के फल, तने और कोमल पुष्पक्रम का उपयोग पूर्वोत्तर एवं दक्षिण भारत के कई जनजातीय समुदाय सब्जी के रूप में करते हैं। मूसा वंश की कई वन्य प्रजातियाँ, जैसे मूसा अरुणाचलेंसिस, मूसा ऑर्नाटा, मूसा रुब्रा, मूसा सैंगुइनिया और मूसा वेल्यूटिना अपने आकर्षक रंगीन पुष्पावरण के कारण विशेष महत्व रखती हैं। इनके पुष्पावरण लाल, गुलाबी, पीले और बैंगनी रंगों के होते हैं, जिससे इनकी बागवानी बाजार में अच्छी मांग रहती है। इन वन्य केला प्रजातियों का उपयोग सजावटी पौधों, गमलों में उगाने वाले पौधों, कर्तित पुष्प और बगीचों की सजावट के लिए बड़े स्तर पर किया जा सकता है। इन प्रजातियों का संरक्षण और व्यावसायिक उपयोग भविष्य में किसानों और उद्यमियों के लिए आय के नए अवसर भी उत्पन्न कर सकता है।

केला केवल एक लोकप्रिय फल फसल ही नहीं, बल्कि समृद्ध जैव विविधता और पोषण का महत्वपूर्ण स्रोत भी है। इसकी वन्य एवं पारंपरिक प्रजातियाँ न केवल खाद्य और औषधीय महत्व रखती हैं, बल्कि सजावटी, औद्योगिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी हैं। केले की वन्य प्रजातियाँ केवल जैव विविधता का महत्वपूर्ण हिस्सा ही नहीं हैं, बल्कि पोषण, औषधीय गुणों, प्राकृतिक रेशों एवं जलवायु सहनशीलता जैसी विशेषताओं के कारण भी अत्यंत उपयोगी मानी जाती हैं। इन प्रजातियों

जीआई टैग

भौगोलिक संकेतक एक ऐसा प्रमाण चिह्न है, जो किसी विशेष क्षेत्र, जलवायु, मिट्टी एवं पारंपरिक उत्पादन पद्धति से जुड़ी विशिष्ट गुणवत्ता वाले उत्पाद की पहचान करता है। जीआई टैग यह दर्शाता है कि संबंधित उत्पाद की विशेषताएँ उसके भौगोलिक क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। यह किसी गांव, शहर, क्षेत्र अथवा देश विशेष से संबंधित उत्पाद को कानूनी पहचान एवं संरक्षण प्रदान करता है। जीआई टैग मिलने से उस पारंपरिक किस्म या उत्पाद के अनाधिकृत उपयोग पर रोक लगती है तथा स्थानीय उत्पादकों के अधिकार सुरक्षित रहते हैं। इसके साथ ही यह किसानों एवं उत्पादकों की आय बढ़ाने, स्थानीय पहचान को मजबूत करने तथा उपभोक्ताओं को गुणवत्तायुक्त उत्पाद उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में केले की कई पारंपरिक किस्मों को भी उनकी विशिष्ट गुणवत्ता एवं क्षेत्रीय पहचान के आधार पर जीआई टैग प्राप्त हुआ है। इनमें कर्नाटक का नंजनगुड़ केला एवं कमलापुर रेड केला, तमिलनाडु के विरूपाक्षी हिल केला, सिरूमलाई हिल केला तथा कन्याकुमारी मट्टी केला, केरल का चैंगलिकोडन नेंद्रन केला, महाराष्ट्र का जलगांव केला तथा गोवा की म्यंदोली केला किस्म प्रमुख हैं। ये सभी किस्में अपने-अपने क्षेत्रों की विशिष्ट जलवायु एवं पारंपरिक कृषि पद्धतियों के कारण विशेष पहचान रखती हैं तथा स्थानीय किसानों की आजीविका एवं क्षेत्रीय कृषि विरासत के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

दक्षिण भारत की पारंपरिक केला किस्में

मट्टी

कुन्नन

पूविल्ला चुंडन

सेम्मट्टी

भाकृअनुप-राष्ट्रीय केला अनुसंधान केन्द्र, तिरुचिरापल्ली, तमिलनाडु

औषधीय एवं पोषण गुण

केले के फल, फूल, छद्म तना एवं पत्तियों का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में लंबे समय से किया जाता रहा है। केले के फूल का उपयोग मधुमेह एवं महिलाओं से संबंधित समस्याओं में लाभकारी माना जाता है, जबकि छद्म तने का रस गुर्दे की पथरी की समस्या में उपयोग किया जाता है। केले में सूजनरोधी, एंटीऑक्सीडेंट, कैंसररोधी तथा मधुमेहरोधी गुण पाए जाते हैं। नेंद्रन केला अपनी उच्च प्रो-विटामिन-ए कैरोटिनॉयड मात्रा एवं पोषण गुणों के कारण विशेष महत्व रखता है।

दुर्लभ प्रजाति मूसा इंडंडामानेन्सिस

एंसेटे ग्लॉकम

में मौजूद आनुवंशिक विविधता भविष्य में बेहतर एवं अधिक सहनशील केला किस्मों के विकास के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

मूसा टेक्सटिलिस, जिसे अबाका या मनीला हेम्प के नाम से जाना जाता है, फिलीपींस की एक महत्वपूर्ण केला प्रजाति है। इसकी खेती मुख्य रूप से खाने योग्य फल के लिए नहीं, बल्कि मजबूत प्राकृतिक रेशों के लिए की जाती है। इसकी पत्ती आवरण से प्राप्त रेशे अत्यंत मजबूत, लचीले तथा खारे पानी से प्रभावित न होने वाले होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण इनका उपयोग रस्सियां, वस्त्र, विशेष कागज, टी-बैग तथा हस्तशिल्प उत्पाद बनाने में किया जाता है। पर्यावरण अनुकूल रेशों के कारण इसकी खेती उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रही है।

मूसा इंडांमानेन्सिस अंडमान द्वीप समूह में पाई जाने वाली एक विशिष्ट जंगली केला प्रजाति है। इसका नाम भारत के अंडमान द्वीप के नाम पर रखा गया है, जो अपनी समृद्ध एवं विशिष्ट जैव विविधता के लिए प्रसिद्ध है। जनजातीय समुदाय इसके फलों का उपयोग आहार के रूप में करते हैं। इसके फल सामान्य केले की तुलना में अधिक मीठे होते हैं तथा पकने पर फल का छिलका और गूदा पीला-नारंगी रंग का हो जाता है।

वर्तमान में उगाए जाने वाले अधिकांश केले और प्लांटेन बीजरहित त्रिगुणित (2n=33) प्रकार के हैं, जिनकी उत्पत्ति मुख्यत: दो जंगली प्रजातियों मूसा अक्यूमिनाटा और मूसा बाल्बिसियाना से हुई है। इनमें मूसा बाल्बिसियाना अपनी मजबूत वृद्धि, सूखा एवं रोग सहनशीलता के लिए विशेष महत्व रखती है और केला प्रजनन कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण आनुवंशिक स्रोत मानी जाती है।

मूसा बाल्बिसियाना समूह में 'भीमकोल' नामक बीजयुक्त केला विशेष रूप से लोकप्रिय है। इसका फल एंटीऑक्सीडेंट, पोटेशियम, कैल्शियम, आयरन और विटामिन-सी से भरपूर होता है, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक है। आसानी से पचने के कारण इसे शिशुओं के प्रथम ठोस आहार के रूप में भी उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद में इसका उपयोग गैस्ट्राइटिस, एनीमिया और अल्सर जैसी समस्याओं में लाभकारी माना गया है।

मूसा अक्यूमिनाटा दक्षिण-पूर्व एशिया में पाई जाने वाली एक जंगली केला प्रजाति है और अधिकांश खाद्य केले की प्रमुख पूर्वज प्रजातियों में शामिल है। यह उन्नत केला संकरों को "ए" जीनोम प्रदान करती है तथा बिना बीज वाले फल बनने की क्षमता, बेहतर फल गुणवत्ता और अधिक उत्पादन क्षमता जैसे गुणों के लिए विशेष महत्व रखती है। इसके फल लंबे आकार के होते हैं तथा इसमें अत्यधिक आनुवंशिक विविधता पाई जाती है, जिसके कारण यह केला सुधार कार्यक्रमों में एक महत्वपूर्ण आनुवंशिक स्रोत मानी जाती है।

पाचा बोंथा बठीसा

केले की प्रजाति एंसेटे सुपरबम

महत्व

भारत में केले को "कल्पतरु" कहा जाता है, जिसका अर्थ है- ऐसा पौधा जिसके प्रत्येक भाग का उपयोग संभव हो। केला केवल एक लोकप्रिय फल ही नहीं, बल्कि पोषण, स्वास्थ्य, कृषि आधारित उद्योग एवं ग्रामीण आजीविका का महत्वपूर्ण आधार भी है। इसके फल कार्बोहाइड्रेट, पोटेशियम, विटामिन, एंटीऑक्सीडेंट एवं आहार रेशों से भरपूर होते हैं, जो पाचन सुधारने, हृदय स्वास्थ्य बनाए रखने तथा शरीर को तुरंत ऊर्जा प्रदान करने में सहायक हैं।

मूसा अक्यूमिनाटा में कई उप प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें सबस्प. अक्यूमिनाटा, सबस्प. बर्मानिका, सबस्प. एरेंस, सबस्प. हलाबानेन्सिस, सबस्प. मलाकेन्सिस, सबस्प. माइक्रोकार्पा, सबस्प. सियामिया, सबस्प. ट्रंकाटा, सबस्प. बैंक्सी तथा सबस्प. जेब्रिना प्रमुख हैं। इनमें सबस्प. जेब्रिना और सबस्प. मलाकेन्सिस को फ्यूजेरियम विल्ट रोग के प्रति प्रतिरोधी माना जाता है, जबकि सबस्प. बैंक्सी प्रो-विटामिन-ए कैरोटिनॉयड्स का महत्वपूर्ण स्रोत है।

अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि सबस्प. मलाकेन्सिस, बैंक्सी, जेब्रिना और बर्मानिका ने केले के वंशीकरण एवं उन्नत

केले की आकर्षक प्रजाति मूसा ऑरेंटियाका

किस्मों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यही कारण है कि इन उप-प्रजातियों का उपयोग वर्तमान में केला प्रजनन एवं सुधार कार्यक्रमों में व्यापक रूप से किया जा रहा है।

मूल्यवर्धित उत्पाद: कच्चे एवं पके केले से चिप्स, जैम, जेली, जूस, स्मूदी, प्यूरी, आटा एवं पेय पदार्थ जैसे अनेक मूल्यवर्धित उत्पाद बनाए जाते हैं। अधिक रेजिस्टेंट स्टार्च होने के कारण केले से प्री-बायोटिक गुणों वाले स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद भी तैयार किए जा रहे हैं, जो मधुमेह रोगियों के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

सारणी: भारत में जीआई टैग प्राप्त प्रमुख केला किस्मों की विशेषताएँ

किस्म	राज्य	वर्ष	क्षेत्र	प्रमुख विशेषता
नंजनगुड केला	कर्नाटक	2006-07	कर्नाटक के चामराज नगर जिला	विशिष्ट स्वाद एवं सुगंध
विरुपाक्षी हिल केला	तमिलनाडु	2008-09	तमिलनाडु के डिंडीगुल जिले की लोअर पलनी पहाड़ियाँ	बेहतर स्वाद एवं फ्लेवर
सिरुमलाई हिल केला	तमिलनाडु	2008-09	तमिलनाडु के डिंडीगुल जिले की सिरुमलाई पहाड़ियाँ	विशिष्ट स्वाद एवं फ्लेवर
कमलापुर रेड केला	कर्नाटक	2009-10	कर्नाटक के कलबुर्गी जिले के राजनाल, ओकाली एवं नाडविनहल्ली गांव	फल के छिलके का आकर्षक लाल रंग
चेंगालिकोडन नेंद्रन केला	केरल	2014-15	केरल के त्रिशूर जिले का चेंगाझी कोडु गांव	विशेष आकार, रंग एवं स्वाद
जलगांव केला	महाराष्ट्र	2016-17	महाराष्ट्र के जलगांव जिले का तंदलवाड़ी गांव	रेशा एवं खनिज तत्वों से भरपूर
म्यंदोली केला	गोवा	2021-22	उत्तरी गोवा के पेरनेम, बारदेज एवं बिचोलिम तालुका	स्थानीय विशिष्ट गुणवत्ता एवं स्वाद
कन्याकुमारी मट्टी केला	तमिलनाडु	2023-24	तमिलनाडु का कन्याकुमारी जिला	उंगली जैसे छोटे फल, मीठी सुगंध एवं शहद जैसा स्वाद

भारत की पारंपरिक केला किस्में

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कई पारंपरिक केला किस्में उगाई जाती हैं। दक्षिण भारत में मट्टी, सिरुमलाई, विरुपाक्षी, पूवन, कर्पूरवल्ली एवं नेंद्रन प्रमुख हैं। पूर्वोत्तर भारत में अमृतसागर, दूधसागर एवं केचुलेप्पा, जबकि ओडिशा एवं पश्चिम बंगाल में चंपा, सिंगापुरी एवं चिनीचंपा लोकप्रिय हैं। बिहार एवं उत्तर प्रदेश में मालभोग, अल्पान एवं कंथाली जैसी स्थानीय किस्में प्रमुख रूप से उगाई जाती हैं।

मालभोग प्रजाति

पूर्वोत्तर भारत की पारंपरिक केला किस्में

अमृतसागर

नूटेपोंग

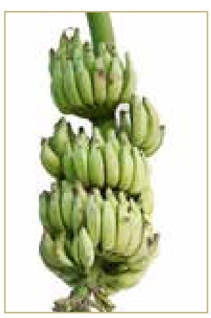

केचुलेप्पा

पगार केला

ओडिशा एवं पश्चिम बंगाल की पारंपरिक केला किस्में

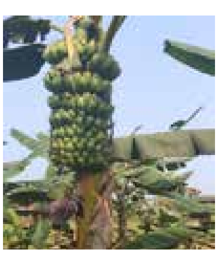

बाठीसा

बालीपटना चंपा

सिंगापुरी

बनुआ

उत्पाद एवं उपयोग

केले के छिलके, पत्तियां, डंठल, पुष्पक्रम एवं छद्मतने का उपयोग खाद्य एवं गैर-खाद्य उत्पादों में किया जाता है। इनसे पशु आहार, प्राकृतिक रेशे, जैव उर्वरक तथा न्यूट्रास्यूटिकल उत्पाद तैयार किए जाते हैं। आज केला रेशा पर्यावरण अनुकूल सामग्री के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है, जिसका उपयोग वस्त्र उद्योग, कागज निर्माण एवं हस्तशिल्प उत्पादों में किया जा रहा है।

पूर्वी भारत में बीजू आम की विविधता का संरक्षण

संजय कुमार सिंह[1], **अंजू बाजपेयी**[2] और **टी. दामोदरन**[3]

भारत में बागवानी फसलों की खेती निरंतर लोकप्रिय हो रही है। अब केवल पारंपरिक किसान ही नहीं, बल्कि शिक्षित एवं पेशेवर लोग भी रोजगार छोड़कर फल बागवानी की ओर आकर्षित हो रहे हैं। बागवानी इन्हें प्रकृति और अपनी मिट्टी से जुड़ाव का सुकून देने के साथ बेहतर आय का अवसर भी प्रदान कर रही है। कई लोगों के लिए यह केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि अपनी जड़ों और ग्रामीण विरासत से पुन: जुड़ने का माध्यम भी बन गई है। बीती शताब्दी के मध्य तक बिहार अपने घने वनों और प्राकृतिक रूप से विकसित बीजू आम के वृक्षों के लिए प्रसिद्ध था। इन वनों में बीजू आम की असंख्य स्थानीय किस्में अपने विशिष्ट स्वाद, मिठास, रस एवं सुगंध के लिए जानी जाती थीं। किंतु अस्सी के दशक में प्लाई उद्योग के विस्तार के साथ बड़ी संख्या में पुराने वृक्षों की कटाई शुरू हुई और धीरे-धीरे बीजू आम की यह समृद्ध विविधता समाप्त होती चली गई। आज अनेक पारंपरिक बीजू आम केवल स्मृतियों तक सीमित होकर रह गए हैं।

भारत में आम की खेती मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं बिहार में की जाती है। देश में लगभग 2316.81 हजार हैक्टर क्षेत्रफल में आम की खेती होती है, जिससे लगभग 20385.99 हजार टन उत्पादन प्राप्त होता है। फलों के राजा आम के मामले में बिहार की विशेष पहचान है। दीघा का मालदह, भागलपुर का जर्दालू तथा बक्सर का चौसा जैसे प्रसिद्ध आम देश-विदेश में लोकप्रिय हैं। बिहार में कुल फल उत्पादन में लगभग 50 प्रतिशत हिस्सेदारी अकेले आम की है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]अध्यक्ष, फसल सुधार एवं जैव-प्राद्योगिकी विभाग, [3]निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, डाकघर-काकोरी, लखनऊ - 226101

बघनगरी (सरैया), मुजफ्फरपुर में 2500 फलों वाला वृक्ष

आम उत्पादन के क्षेत्र में बिहार का देश में चौथा स्थान है तथा राष्ट्रीय उत्पादन में इसकी हिस्सेदारी लगभग 11 प्रतिशत है। राज्य में लगभग 160.24 हजार हैक्टर क्षेत्रफल में आम की खेती की जाती है, जिससे लगभग 1549.97 हजार टन उत्पादन प्राप्त होता है। देश में आम की औसत उत्पादकता 8.94 मीट्रिक टन प्रति हैक्टर है, जबकि बिहार में

बीजू आम की उपयोगिता

- बीजू आम संकलन जैव विविधता के लिए प्रमुख विधि है।
- बीजू आम से अचार एवं अन्य प्रसंस्करित उत्पाद तैयार किए जाते हैं, जिनकी बाजार में अच्छी मांग रहती है।
- रेशायुक्त एवं अम्लीय गूदे के कारण यह पाचन के लिए लाभकारी माना जाता है।
- इसकी मजबूत लकड़ी का उपयोग फर्नीचर एवं मकान निर्माण में किया जाता है।
- मिथिला क्षेत्र में इसे सजीव बाड़े के रूप में भी लगाया जाता है।
- कई बीजू आम किस्में रोग सहनशील एवं नियमित फल देने वाली होती हैं।
- फलों की भंडारण क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है।
- बीजू आम के वृक्षों में उत्पादन अधिक तथा फल गुच्छों में लगते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में यह अतिरिक्त आय का महत्वपूर्ण स्रोत है।

यह 9.67 टन प्रति हैक्टर दर्ज की गई है। उत्पादकता की दृष्टि से बिहार देश के प्रमुख आम उत्पादक राज्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राज्य के प्रमुख आम उत्पादक जिलों में दरभंगा, मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, पूर्वी एवं पश्चिमी चंपारण तथा भागलपुर शामिल हैं। इनमें दरभंगा, पूर्वी चंपारण एवं मुजफ्फरपुर शीर्ष आम उत्पादक जिले हैं, जिनकी हिस्सेदारी बिहार के कुल आम क्षेत्रफल का लगभग 23.2 प्रतिशत है।

मेहसी (पूर्वी चंपारण) का लंगड़ा बीजू आम, औसत भार 540 ग्राम

मिथिला कभी आम की 171 किस्मों के लिए प्रसिद्ध था। 1890 के दशक में दरभंगा राज के बॉटेनिस्ट चार्ल्स मैरिस ने आनंद बाग में सौ से अधिक किस्मों के आम लगाए, जिनमें 40 किस्में इन्होंने स्वयं विकसित की थीं। इनकी पुस्तक कल्टीवेटेड मैंगोज ऑफ इंडिया में इसका उल्लेख मिलता है।

माना जाता है कि इन्हीं बागों से आम की विभिन्न किस्में आसपास के गांवों तक पहुंची और मिथिला में जैव विविधता से भरपूर बगीचों की परंपरा विकसित हुई। आज भी मधुबनी के सरिसब पाही और दीप गांव में 151 किस्मों का प्रदर्शन कर इस विरासत को जीवित रखने का प्रयास किया जा रहा है।

मिथिला के बगीचों की खासियत यह है कि छोटे बगीचों में भी एक दर्जन से लेकर 51 तक किस्मों के आम मिल जाते हैं। यहां अप्रैल-मई में पकने वाले जर्दालू से लेकर अगस्त-सितंबर में पकने वाले जलमरई और स्वर्णरेखा तक एक ही बगीचे में पाए जाते हैं। बरमसिया आम साल में दो-तीन बार फल देता है। यहां सजमनिया, सेरहा, कर्पूरिया-धुमनाहा, लक्ष्मेश्वर भोग, सपेटा, डोमा बंबई, सब्जा बंबई और मुफर्रस जैसी कई देसी किस्में प्रसिद्ध हैं।

बिहार में बीजू आम का अचार आज भी बेहद लोकप्रिय है और कई घरों में 51 किस्मों के अचार बनाए जाते हैं। पूर्वजों की स्मृति में पेड़ लगाने तथा मंदिरों के लिए आम के बगीचे दान करने की परंपरा भी रही है। हालांकि बाजार में मालदह जैसे गूदेदार आमों की बढ़ती मांग के कारण फजुली, सिंदुरिया, लंगड़ा और भेमहा जैसी देसी व रसदार किस्में तेजी से गायब हो रही हैं। ऐसे में कई किसान 3500 से अधिक बीजू आम के पेड़ लगाकर इनके संरक्षण का कार्य कर रहे हैं। बीजू आम न केवल पर्यावरण और जल संरक्षण में सहायक है, बल्कि अचार और चटनी के लिए भी इसका कोई विकल्प नहीं माना जाता।

आम की जैव विविधता के संरक्षण का स्वरूप

संरक्षण

बीजू आम के संरक्षण में भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान की महत्वपूर्ण भूमिका है। बिहार में आम की पारंपरिक किस्मों में लगातार कमी को देखते हुए बिहार सरकार ने दीघा मालदह, जर्दालू,

सुरहाचट्टी (हायाघाट), दरभंगा, दशहरी बीजू आम का गहरा पीला रंग

गुलाब खास, आम्रपाली, किशन भोग और चौसा जैसी किस्मों के संरक्षण एवं विस्तार के लिए अध्ययन शुरू किया है। इसी क्रम में बिहार राज्य जैव विविधता परिषद, पटना ने संस्थान के साथ मिलकर बिहार के स्वदेशी बीजू आम की विविधता के मूल्यांकन और संरक्षण रणनीति पर कार्य आरंभ किया है।

तेजी से बढ़ते शहरीकरण और बागों के घटते क्षेत्रफल के कारण कई देसी आम विलुप्ति के संकट में हैं। ऐसे में बीजू आम के जर्मप्लाज्म संरक्षण को विशेष महत्व दिया जा रहा है।

संस्थान के वैज्ञानिक फल फसलों के आनुवंशिक संसाधनों के प्रबंधन एवं गुणवत्ता सुधार पर लगातार कार्य कर रहे हैं। अब तक 79 संग्रहीत बीजू आम जननद्रव्यों में से 43 प्रकार की देसी किस्मों की पहचान की जा चुकी है, जिन्हें संरक्षण के साथ व्यावसायिक स्तर पर बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

समस्तीपुर के देशवा-भगवानपुर का 450 ग्राम वजनी मालदह बीजू आम

बिहार के विभिन्न जिलों में किसानों द्वारा संरक्षित बीजू आम की अनेक विशिष्ट किस्में आज भी जैव विविधता की समृद्ध विरासत को जीवित रखे हुए हैं। मधुबनी, वैशाली, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, समस्तीपुर और पूर्वी चंपारण जैसे जिलों में किसानों ने रारी, राजभोग, नारायणभोग, किशनभोग, लंगड़ा, दशहरी और मालदा जैसे बीजू पौधों का संरक्षण किया है। इन किस्मों की प्रमुख विशेषताओं में नियमित एवं अधिक फलन, गुच्छेदार फलन, रेशा रहित गूदा, पतली गुठली, उच्च मिठास, देर से पकने तथा बेहतर भंडारण क्षमता शामिल हैं।

सारणी: वर्ष 2025 में बिहार के विभिन्न जिलों में पाए गए बीजू आमों की विविधता एवं गुण

आम जीनोटाइप के चयन हेतु विचार किए गए गुण	संख्या
अचार हेतु उपयुक्त एवं उच्च उपज (6 क्विंटल प्रति वृक्ष), दीघरा, मुजफ्फरपुर	01
अत्यंत देर से पकने वाले (अगस्त में परिपक्व), दीघरा, मुजफ्फरपुर	01
बड़े फल वाला (500 ग्राम) एवं देर से पकने वाला, दीघरा, समस्तीपुर	01
चूसने योग्य प्रकार, 3 क्विंटल प्रति वृक्ष उपज, 330 ग्राम फल भार, जुलाई में पकने वाला, सुगंधित, फल गिरने के प्रति सहनशील, 15 दिन भंडारण क्षमता, गुच्छेदार फलन, मकेर, सारण	04
चूसने योग्य प्रकार, उच्च टीएसएस, 3 क्विंटल प्रति वृक्ष उपज, 9 दिन भंडारण क्षमता , फल मक्खी के प्रति सहनशील, पतली गुठली, अधिक गूदा, दानापुर, पटना	03
30 दिन भंडारण क्षमता 300 ग्राम फल भार, 3 क्विंटल प्रति वृक्ष उपज, पतला छिलका, मिश्रवालिया जगदीश, वैशाली	01
12 क्विंटल प्रति वृक्ष उपज, 30-35 फल प्रति गुच्छा, उच्च भंडारण क्षमता, मंगनपुर, वैशाली	01
24 क्विंटल प्रति वृक्ष उपज, 125 वर्ष पुराना वृक्ष, फल गिरने के प्रति सहनशील, कोरमाथू, गया	01
सिपिया बीजू (5 क्विंटल प्रति वृक्ष, 25 वर्ष पुराना वृक्ष) तथा शेरहा (850 ग्राम फल भार, पतली गुठली, 5 क्विंटल उपज), बहा चौकी, मुंगेर	02
मोटा छिलका, 6 दिन शेल्फ लाइफ, अगस्त अंतिम सप्ताह में परिपक्व, 4 क्विंटल प्रति वृक्ष उपज, दीघरा, समस्तीपुर	01
कुल प्लस प्रकार के वृक्ष	**16**

कई बीजू वृक्ष 50 से 200 वर्ष पुराने होने के बावजूद आज भी भरपूर उत्पादन दे रहे हैं। कुछ किस्मों में प्रति वृक्ष 10 क्विंटल तक उपज तथा 2000-2500 फल प्राप्त होते हैं। रारी, राजभोग, नारायणभोग और बीजू लंगड़ा जैसी किस्में स्वाद, सुगंध और गुणवत्ता के कारण विशेष पहचान रखती हैं। वहीं कुछ चूसने योग्य बीजू आमों में गुच्छेदार फलन

गोरौल (वैशाली) का अधिक भंडारण क्षमता वाला ताजा फल खाने योग्य बीजू आम

और कीट एवं रोगों के प्रति सहनशीलता भी पाई गई है।

इन पारंपरिक किस्मों का संरक्षण न केवल जैव विविधता और पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि भविष्य में देसी आमों के व्यावसायीकरण, प्रसंस्करण तथा किसानों की आय बढ़ाने की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी माना जा रहा है। ■

लीची की रंग-बिरंगी दुनिया और जैव विविधता का संरक्षण

सुनील कुमार, अभय कुमार, बिकास दास, अशोक धाकड़, रोहित कुमार और **जीतेन्द्र कुमार**

लीची एक स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं उच्च मूल्य का उपोष्णकटिबंधीय फल है, जो अपने आकर्षक रंग, विशिष्ट स्वाद एवं स्वास्थ्यवर्धक गुणों के कारण व्यापक रूप से लोकप्रिय है। भारत, विश्व के प्रमुख लीची उत्पादक देशों में शामिल है तथा इसकी खेती पारंपरिक क्षेत्रों के साथ-साथ नए क्षेत्रों में भी तेजी से विस्तार पा रही है। सीमित आनुवंशिक विविधता के बावजूद, विभिन्न जर्मप्लाज्म का संरक्षण भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर द्वारा किया जा रहा है। किसानों द्वारा पारंपरिक किस्मों के संरक्षण एवं संवर्धन के प्रयासों को पादप जीनोम सेवियर पुरस्कार के माध्यम से प्रोत्साहित किया गया है। जैव विविधता संरक्षण, उपभोक्ता-आधारित किस्म विकास, आधुनिक तकनीकों एवं किसान-वैज्ञानिक सहभागिता के माध्यम से लीची उत्पादन को अधिक टिकाऊ और लाभकारी बनाया जा रहा है, जो कृषि समृद्धि एवं पोषण सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

लीची एक सदाबहार उपोष्णकटिबंधीय फल है, जो सैपिन्डेसी कुल से संबंधित है तथा अपने विशिष्ट स्वाद, आकर्षक लाल पेरिकार्प और समृद्ध पोषण गुणों के कारण विश्वभर में अत्यधिक लोकप्रिय है। स्वाद एवं पोषण से भरपूर होने के कारण इसे "फलों की रानी" भी कहा जाता है।

लीची का मूल उद्गम दक्षिणी चीन माना जाता है, जहाँ से पिछले लगभग 400 वर्षों में इसका प्रसार विभिन्न उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय देशों में हुआ। वर्तमान में चीन, भारत, थाईलैंड और वियतनाम इसके प्रमुख उत्पादक देश हैं। चीन में लीची की खेती का इतिहास 2300 वर्षों से अधिक पुराना है, जिसके कारण वहाँ विविध जर्मप्लाज्म संसाधन एवं अनेक उन्नत किस्में विकसित हुई हैं। वर्तमान में चीन के ग्वांगझोऊ स्थित गुआंगडोंग कृषि विज्ञान अकादमी के फल वृक्ष अनुसंधान संस्थान में स्थापित राष्ट्रीय लीची जर्मप्लाज्म जीन बैंक में 500 से अधिक अभिग्रह संरक्षित हैं, जो विश्व का सबसे बड़ा लीची जर्मप्लाज्म भंडार माना जाता है।

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर (बिहार)- 842002

वहीं भारत, विश्व का दूसरा सबसे बड़ा लीची उत्पादक देश है, जहाँ इसका क्षेत्रफल 1 लाख हैक्टर से अधिक तथा वार्षिक उत्पादन लगभग 5.78 लाख मीट्रिक टन है। परंपरागत रूप से इसकी खेती बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड एवं उत्तराखंड के पूर्वी तथा उप हिमालयी क्षेत्रों तक सीमित थी, किंतु हाल के वर्षों में उच्च आर्थिक लाभ एवं ऑफ-सीजन उत्पादन की संभावनाओं के कारण इसका विस्तार पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर-पूर्वी राज्यों तथा दक्षिणी पठारी क्षेत्रों तक भी हुआ है।

लीची में जैव विविधता

भारत में लीची का आनुवंशिक आधार अपेक्षाकृत संकीर्ण है तथा व्यावसायिक स्तर पर मुख्यत: 5-6 प्रमुख किस्मों की ही खेती की जाती है। इसके बावजूद फल के आकार, आकृति, स्वाद, छिलके की बनावट, बीज के आकार तथा फल फटने (क्रैकिंग) के प्रति सहनशीलता जैसे गुणों में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। इन विविध अभिग्रहों

का संरक्षण एवं संधारण भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर (बिहार) के फील्ड जीन बैंक में किया जा रहा है।

'शाही', 'चाइना', 'बॉम्बे', 'बेदाना' तथा 'रोज सेंटेड' जैसी किस्में अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध हैं। 'शाही' किस्म उत्कृष्ट स्वाद के लिए जानी जाती है, किंतु इसमें बड़े बीज तथा फल फटने की समस्या अधिक होती है। वहीं 'चाइना' किस्म में वैकल्पिक फलन की प्रवृत्ति पाई जाती है, जबकि 'बेदाना' में उत्पादन अपेक्षाकृत कम होता है।

लीची की किस्मों के नामकरण को लेकर भी काफी भ्रम देखने को मिलता है। कई बार एक ही किस्म को विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है, जबकि कुछ मामलों में अलग-अलग किस्मों के नाम समान पाए जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में वैज्ञानिक पहचान एवं जर्मप्लाज्म संरक्षण की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

जर्मप्लाज्म संरक्षण

आधुनिक कृषि में सीमित किस्मों पर बढ़ती निर्भरता के कारण पारंपरिक जैव विविधता के लुप्त होने का संकट लगातार बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में लीची की पारंपरिक एवं स्थानीय किस्मों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक हो गया है। इस दिशा में भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर (बिहार) द्वारा जर्मप्लाज्म संग्रह, संरक्षण एवं मूल्यांकन का महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है।

केंद्र में स्थापित फील्ड जीन बैंक विभिन्न क्षेत्रों से संकलित लीची जर्मप्लाज्म का संरक्षण कर भविष्य के लिए मूल्यवान आनुवंशिक संसाधनों को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

गुच्छों में शाही लीची के आकर्षक फल

भावी परिदृश्य

लीची के सतत विकास एवं जैव विविधता संरक्षण के लिए पारंपरिक किस्मों का संरक्षण और उनका वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण अत्यंत आवश्यक है। साथ ही, उपभोक्ताओं की पसंद के अनुरूप नई एवं गुणवत्तापूर्ण किस्मों के विकास पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों को देखते हुए जलवायु-अनुकूल उत्पादन तकनीकों का प्रसार, मूल्य संवर्धन तथा निर्यात को बढ़ावा देना समय की मांग है। इसके अतिरिक्त, किसान, वैज्ञानिक एवं बाजार के बीच बेहतर समन्वय स्थापित कर लीची उत्पादन को अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है।

कृषकों का अहम योगदान: देसी एवं पारंपरिक किस्मों के संरक्षण और संवर्धन में किसानों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। किसानों के इन प्रयासों को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के पादप किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण द्वारा प्रतिवर्ष "पादप जीनोम सेवियर पुरस्कार" प्रदान किया जाता है। यह पुरस्कार पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001 के अंतर्गत जैव विविधता संरक्षण तथा कृषक किस्मों के संवर्धन को बढ़ावा देने हेतु दिया जाता है।

मुजफ्फरपुर के लीची उत्पादक संघ को वर्ष 2020-21 के लिए "प्लांट जीनोम सेवियर कम्युनिटी अवॉर्ड" हेतु चयनित किया गया था। यह सम्मान गंडकी संपदा, गंडकी लालिमा, गंडकी योगिता, रोज सेंटेड, स्वर्ण रूपा, लेट बेदाना, अर्ली बेदाना, लौंगिया, त्रिकोलिया, मंदराजी एवं पुरबी जैसी पारंपरिक लीची किस्मों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए प्रदान किया गया।

वृक्ष पर लदे बेदाना लीची के फल

लीची की रंग-बिरंगी दुनिया केवल स्वाद और आकर्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जैव विविधता संरक्षण, वैज्ञानिक नवाचार और किसानों की समृद्धि की एक प्रेरक कहानी भी है। पादप जीनोम सेवियर पुरस्कार जैसी पहलें यह दर्शाती हैं कि किसानों के पारंपरिक ज्ञान और वैज्ञानिक सहयोग के समन्वय से सतत कृषि विकास को नई दिशा दी जा सकती है। इस प्रकार, लीची केवल एक फल नहीं, बल्कि जैव विविधता संरक्षण, वैज्ञानिक प्रगति और कृषि समृद्धि का प्रतीक है, जो भविष्य की टिकाऊ एवं पोषण-सुरक्षित कृषि प्रणाली का मार्ग प्रशस्त करती है। ■

विविधता से भरपूर भौगोलिक संकेतक फल

प्रकाश पाटिल[1], **भूपेन्द्र सागोरे**[2], **बृजेश कुमार यादव**[3] और **वाणी एन. यू.**[4]

भारत अपनी भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं जैविक विविधता के कारण विश्व में विशिष्ट स्थान रखता है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादित फल अपनी अनूठी गुणवत्ता, स्वाद, सुगंध एवं पारंपरिक खेती पद्धतियों के कारण अलग पहचान बनाते हैं। भौगोलिक संकेतक (जीआई) टैग ऐसे विशिष्ट फलों की मौलिकता, क्षेत्रीय विरासत और किसानों के अधिकारों के संरक्षण का प्रभावी माध्यम है। प्रस्तुत लेख में भारत के जीआई टैग प्राप्त फलों की विशेषताओं, उत्पादन क्षेत्रों, पारंपरिक एवं वैज्ञानिक खेती तकनीकों तथा उनके सामाजिक-आर्थिक महत्व का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, इन फलों की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बढ़ती मांग, निर्यात क्षमता, ब्रांड मूल्य और किसानों की आय बढ़ाने में उनकी भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। लेख में सरकारी प्रोत्साहन योजनाओं, विपणन, प्रसंस्करण तथा संरक्षण से जुड़ी चुनौतियों एवं संभावनाओं का भी उल्लेख किया गया है। यह अध्ययन भारतीय जीआई फलों की समृद्ध विरासत को उजागर करते हुए ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने तथा "वोकल फॉर लोकल" और "आत्मनिर्भर भारत" की अवधारणा को मजबूती प्रदान करता है।

भौगोलिक संकेतक (जीआई) किसी विशेष क्षेत्र में उत्पन्न उत्पादों की विशिष्ट गुणवत्ता, प्रतिष्ठा एवं पहचान को संरक्षण प्रदान करता है। फलों के संदर्भ में यह उनकी मौलिकता, स्वाद, सुगंध, रंग तथा पोषण संबंधी विशेषताओं को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी फल की गुणवत्ता उस क्षेत्र की जलवायु, मृदा एवं पारंपरिक कृषि पद्धतियों से जुड़ी होती है। उदाहरणस्वरूप, महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र का अल्फांसो आम अपनी विशिष्ट मिठास और स्वाद के लिए प्रसिद्ध है।

जीआई टैग प्राप्त फल राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, जिससे उनकी मांग, ब्रांड वैल्यू और बाजार मूल्य में वृद्धि होती है। इससे किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ मिलता है तथा नकली उत्पादों पर नियंत्रण संभव होता है। वित्त वर्ष 2024-25 में भारत के ताजे फलों के निर्यात मूल्य में 18% से अधिक वृद्धि दर्ज की गई और निर्यात ₹9,977 करोड़ तक पहुँच गया। वर्तमान में भारतीय ताजे फल

[1]परियोजना समन्वयक (फल), [4]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, परियोजना समन्वयक (फल) कार्यालय, भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु, कर्नाटक, [2]सहायक संचालक उद्यानिकी, जिला भिण्ड, उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग, भोपाल, मध्य प्रदेश, [3]पीएच.डी. शोधार्थी, खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, नई दिल्ली

फलों में जीआई टैग का महत्व

भौगोलिक संकेतक (जीआई) एक कानूनी प्रावधान है, जो किसी विशेष क्षेत्र से उत्पन्न उत्पादों की विशिष्ट गुणवत्ता, प्रतिष्ठा एवं विशेषताओं को संरक्षण प्रदान करता है। यह प्रमाणित करता है कि उत्पाद की पहचान उसके भौगोलिक मूल स्थान से जुड़ी हुई है। भारत में वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के अंतर्गत उद्योग एवं आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग जीआई प्रणाली के संचालन एवं निगरानी के लिए नोडल संस्था के रूप में कार्य करता है। भारत, विश्व का दूसरा सबसे बड़ा फल उत्पादक देश है, जहाँ विविध कृषि जलवायु परिस्थितियों में उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय एवं समशीतोष्ण फलों की अनेक प्रजातियाँ उगाई जाती हैं। भारतीय फल अपने विशिष्ट स्वाद, गुणवत्ता एवं पोषणात्मक गुणों के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। इनमें विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट एवं आहार रेशे प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो पोषण सुरक्षा एवं स्वास्थ्य संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फलों के संदर्भ में जीआई का विशेष महत्व है, क्योंकि यह उत्पाद की विशिष्ट पहचान को सुरक्षित रखने के साथ किसानों की आय वृद्धि, पारंपरिक कृषि पद्धतियों के संरक्षण एवं ग्रामीण विकास को भी प्रोत्साहित करता है। दशहरी आम, अल्फांसो आम, नागपुर संतरा एवं किन्नौर सेब जैसे कई भारतीय फल जीआई टैग प्राप्त कर वैश्विक स्तर पर अपनी अलग पहचान बना चुके हैं।

85 देशों में निर्यात किए जा रहे हैं। हाल ही में नंजनगुड रसबाले केला तथा खासी संतरा जैसे जीआई फलों का निर्यात भी बढ़ा है।

भौगोलिक संकेतक पारंपरिक कृषि ज्ञान, स्थानीय खेती पद्धतियों एवं जैव विविधता के संरक्षण में भी सहायक हैं। यह उपभोक्ताओं को वास्तविक एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पाद की पहचान सुनिश्चित करता है तथा सतत कृषि, ग्रामीण विकास, कृषि पर्यटन और रोजगार सृजन को बढ़ावा देकर किसानों की आय संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

खेती एवं कृषि पद्धतियाँ

देवगढ़ अल्फांसो

भौगोलिक संकेतक (जीआई) प्राप्त फलों की खेती उनकी विशिष्ट पहचान, गुणवत्ता एवं क्षेत्रीय विशेषताओं को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन फलों का उत्पादन सामान्यतः उन क्षेत्रों में किया जाता है, जहाँ की जलवायु, मिट्टी, तापमान एवं वर्षा की परिस्थितियाँ उनके विकास के लिए अनुकूल होती हैं। यही प्राकृतिक कारक फलों के स्वाद, रंग, आकार, सुगंध एवं पोषण गुणों को विशिष्ट बनाते हैं।

जीआई फलों की खेती में स्थानीय किस्मों का चयन विशेष महत्व रखता है, क्योंकि ये किस्में क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होती हैं तथा रोग एवं कीटों के प्रति अधिक सहनशील होती हैं। इनके उपयोग से जैव विविधता संरक्षण एवं पारंपरिक फल प्रजातियों की सुरक्षा भी संभव होती है। इन फलों के उत्पादन में पारंपरिक कृषि पद्धतियों, स्थानीय ज्ञान एवं अनुभव का व्यापक उपयोग किया जाता है। साथ ही, सतत एवं जैविक कृषि पद्धतियों को भी प्रोत्साहन दिया जाता है, जिनमें जैविक खाद, कम्पोस्ट, फसल चक्र तथा प्राकृतिक कीट नियंत्रण उपाय शामिल हैं। इससे पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षित खाद्य उत्पादन सुनिश्चित होता है।

भारत में भौगोलिक संकेतक प्राप्त फलों की वर्तमान स्थिति

भारत में भौगोलिक संकेतक (जीआई) प्राप्त फलों की स्थिति निरंतर सुदृढ़ हो रही है। देश में पंजीकृत लगभग 508 जीआई उत्पादों में से करीब 152 कृषि एवं खाद्य उत्पादों की श्रेणी में आते हैं, जिनमें लगभग 48 उत्पाद फलों से संबंधित हैं। जीआई किसी उत्पाद की विशिष्टता, गुणवत्ता, क्षेत्रीय पहचान एवं बाजार प्रतिष्ठा को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में सर्वाधिक जीआई उत्पाद वाले राज्यों में कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश एवं केरल प्रमुख हैं। इन राज्यों ने अपनी पारंपरिक कृषि प्रणाली एवं विशिष्ट उत्पादों के कारण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष पहचान बनाई है। कृषि क्षेत्र में लगभग 185 उत्पादों को जीआई प्राप्त हो चुका है, जिनमें फल, मसाले, चाय, कॉफी एवं अन्य उद्यानिकी उत्पाद शामिल हैं। कृषि एवं प्रसंस्करित खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा) जीआई उत्पादों के प्रचार-प्रसार, गुणवत्ता नियंत्रण एवं निर्यात संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वर्तमान में लगभग 48 फलों एवं 26 सब्जियों को जीआई संरक्षण प्राप्त है। उद्यानिकी फसलों में जीआई उत्पादों का योगदान 75 प्रतिशत से अधिक है, जिनमें फलों की हिस्सेदारी लगभग 43 प्रतिशत है। कर्नाटक के अप्पेमिडी आम, नंजनगुड केला, आंध्र प्रदेश के बंगनपल्ली आम तथा पश्चिम बंगाल के हिमसागर और लक्ष्मण भोग आम जैसे फलों को विशेष पहचान प्राप्त हुई है। उत्तर-पूर्वी भारत में तेजपुर लीची एवं त्रिपुरा क्वीन अनन्नास जैसे उत्पाद भी जीआई श्रेणी में शामिल हैं, जबकि मिजो केला, असम नीबू एवं पैशन फ्रूट जैसे कई उत्पाद भविष्य के संभावित जीआई उत्पाद माने जा रहे हैं।

नागपुर संतरा

नंजनगुड रसबाले केला

फलों की उचित परिपक्व अवस्था में कटाई, कटाई उपरांत प्रबंधन, छंटाई, पैकेजिंग एवं शीत भंडारण उनकी गुणवत्ता बनाए रखने में महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त, गुणवत्ता नियंत्रण, प्रयोगशाला परीक्षण एवं अनुरेखण प्रणाली उत्पाद की प्रामाणिकता और उपभोक्ता विश्वास को सुदृढ़ करते हैं। जीआई फलों की खेती जैव विविधता संरक्षण, ग्रामीण रोजगार, किसानों की आय वृद्धि एवं स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।

अवसर एवं निर्यात

भारत में भौगोलिक संकेतक (जीआई) व्यवस्था ने विशिष्ट कृषि उत्पादों, विशेषकर फलों के लिए नए बाजार अवसर एवं निर्यात संभावनाएँ विकसित की हैं। जीआई उत्पाद अपनी गुणवत्ता, विशिष्टता और विश्वसनीयता के कारण घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अलग पहचान बनाते हैं। इससे उत्पादों की मांग, व्यावसायिक मूल्य और बाजार प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।

जीआई प्राप्त फलों की विशेष स्वाद, सुगंध एवं क्षेत्रीय पहचान के कारण वैश्विक बाजार में मांग लगातार बढ़ रही है। यह व्यवस्था उत्पादकों को विदेशी बाजारों तक पहुँचने में सहायता करती है तथा उपभोक्ताओं के बीच विश्वास स्थापित करती है। हालांकि निर्यात की सफलता केवल जीआई टैग पर निर्भर नहीं करती, बल्कि गुणवत्ता, पैकेजिंग, मूल्य निर्धारण और उपभोक्ता पसंद जैसे कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं।

कृषि एवं प्रसंस्करित खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा) जीआई

सरकारी प्रयास एवं नीतियाँ

भौगोलिक संकेतक (जीआई) बौद्धिक संपदा अधिकारों का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है, जिसका उद्देश्य उन उत्पादों की सुरक्षा करना है जिनकी विशिष्ट गुणवत्ता, प्रतिष्ठा एवं पहचान उनके भौगोलिक क्षेत्र से जुड़ी होती है। यह व्यवस्था सुनिश्चित करती है कि केवल अधिकृत उत्पादक ही संबंधित उत्पाद पर जीआई का उपयोग कर सकें। इससे उत्पादों की मौलिकता सुरक्षित रहती है तथा नकली एवं अनुचित उपयोग पर नियंत्रण स्थापित होता है। भारत सरकार ने वर्ष 1999 में "वस्तुओं का भौगोलिक संकेतक (पंजीकरण एवं संरक्षण) अधिनियम" पारित किया, जिसे सितंबर 2003 से लागू किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत जीआई की वैधता 10 वर्षों तक रहती है तथा उसके बाद नवीनीकरण आवश्यक होता है। उद्योग एवं आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग (डीपीआईआईटी) जीआई संरक्षण एवं प्रबंधन के लिए नोडल संस्था के रूप में कार्य करता है। यह विभाग उत्पादकों को पंजीकरण, प्रशिक्षण एवं तकनीकी सहायता प्रदान करता है। भौगोलिक संकेतक प्राप्त उत्पादों के निर्यात संवर्धन में कृषि एवं प्रसंस्करित खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा), विदेश व्यापार महानिदेशालय तथा निर्यात संवर्धन परिषद जैसी संस्थाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये संस्थाएँ उत्पादकों को गुणवत्ता मानकों, विपणन तकनीकों एवं वैश्विक बाजारों की जानकारी उपलब्ध करवाती हैं। सरकार द्वारा विभिन्न व्यापार मेलों, प्रदर्शनी कार्यक्रमों एवं जागरूकता अभियानों का आयोजन कर जीआई उत्पादों को बढ़ावा दिया जा रहा है। सुंदरजा आम महोत्सव जैसे कार्यक्रम उत्पादों की पहचान एवं बाजार पहुँच को मजबूत बनाने में सहायक हैं। उचित सरकारी सहायता, तकनीकी सहयोग एवं बाजार समर्थन से भविष्य में जीआई प्राप्त फल उत्पाद किसानों की आय वृद्धि तथा भारत की वैश्विक कृषि पहचान को और अधिक सशक्त बना सकते हैं।

खासी संतरा

उत्पादों के प्रचार-प्रसार, गुणवत्ता नियंत्रण एवं निर्यात संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संस्था किसानों को प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता, गुणवत्ता मानकों की जानकारी तथा नए बाजारों से जोड़ने का कार्य करती है।

जीआई उत्पादों की विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए डिजिटल अनुरेखण प्रणाली, गुणवत्ता परीक्षण एवं आधुनिक पैकेजिंग तकनीकों का उपयोग बढ़ रहा है। साथ ही, ऑनलाइन व्यापार मंच, खुदरा विपणन श्रृंखलाएँ और डिजिटल माध्यम इनके प्रचार-प्रसार को नई दिशा दे रहे हैं। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित व्यापार मेलों, खरीदार-विक्रेता बैठकों तथा भारतीय दूतावासों के सहयोग से भारतीय जीआई फलों को वैश्विक बाजार में नई पहचान मिल रही है।

इंडी नींबू

चुनौतियों का समाधान

भारत में भौगोलिक संकेतक (जीआई) प्राप्त फलों की संभावनाएँ अत्यंत व्यापक हैं, किन्तु इनके प्रभावी विकास के मार्ग में कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। सबसे प्रमुख समस्या किसानों एवं उपभोक्ताओं के बीच जीआई के प्रति जागरूकता की कमी है।

अनेक उत्पादक अभी भी इसके आर्थिक, कानूनी एवं विपणन संबंधी लाभों से पूर्णतः परिचित नहीं हैं। इसके समाधान हेतु जागरूकता अभियान, प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं शैक्षिक गतिविधियों को बढ़ावा देना आवश्यक है।

नकली एवं अनाधिकृत उत्पादों का प्रसार भी एक गंभीर चुनौती है। इससे वास्तविक उत्पादों की प्रतिष्ठा प्रभावित होती है तथा उपभोक्ताओं के बीच भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है। इस समस्या के समाधान के लिए मजबूत कानूनी संरक्षण, नियमित निगरानी तथा कठोर प्रवर्तन व्यवस्था आवश्यक है, ताकि केवल अधिकृत उत्पादक ही जीआई का उपयोग कर सकें।

सुंदरजा आम

उत्पादों की गुणवत्ता और प्रामाणिकता बनाए रखना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए गुणवत्ता परीक्षण, मानकीकरण, नियमित निरीक्षण तथा सतत एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि पद्धतियों को अपनाना आवश्यक है। जीआई फलों में निर्यात की अपार संभावनाएँ हैं, किन्तु अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता मानक, व्यापार नीतियाँ एवं आयात नियम कई बार बाधा उत्पन्न करते हैं।

इस दिशा में सरकार एवं निर्यात संवर्धन संस्थाओं द्वारा तकनीकी सहायता, बाजार जानकारी और निर्यात सुविधाएँ उपलब्ध करवाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, आर्थिक लाभों का समान वितरण सुनिश्चित करना भी जरूरी है, ताकि छोटे एवं सीमांत किसानों को भी उचित लाभ प्राप्त हो सके। इन चुनौतियों के प्रभावी समाधान से किसानों की आय, ग्रामीण विकास, जैव विविधता संरक्षण तथा भारतीय फलों की वैश्विक पहचान को और अधिक मजबूती मिल सकती है।

सारणी: भौगोलिक संकेतक (जीआई) प्राप्त फलों का प्रथम परीक्षण निर्यात

उत्पाद	राज्य/क्षेत्र	गंतव्य देश
बंगनपल्ली आम	आंध्र प्रदेश	दक्षिण कोरिया
दहानू घोलवड़ चीकू	महाराष्ट्र	ग्रेट ब्रिटेन
मराठवाड़ा केसर आम	महाराष्ट्र	ग्रेट ब्रिटेन
जलगाँव केला	महाराष्ट्र	दुबई
नेंद्रन केला	केरल	सिंगापुर
शाही लीची	बिहार	ग्रेट ब्रिटेन
भागलपुरी जर्दालू आम	बिहार	ग्रेट ब्रिटेन, बहरीन
मखाना	पटना (बिहार)	जापान

सारणी: भारत में भौगोलिक संकेतक (जीआई) प्राप्त फलों का विवरण

फसल	**जीआई प्राप्त फल का नाम**	**राज्य**	**विशेषता**
आम	लक्ष्मण भोग आम	पश्चिम बंगाल	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	खीरसापाती (हिमसागर) आम	पश्चिम बंगाल	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	फजली आम, मालदा	पश्चिम बंगाल	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	मलीहाबादी दशहरी आम	उत्तर प्रदेश	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	ऐपेमिडी आम	कर्नाटक	अचार निर्माण हेतु उपयुक्त
	रत्नागिरी अल्फांसो आम	महाराष्ट्र	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	गिर केसर आम	गुजरात	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	मराठवाड़ा केसर आम	महाराष्ट्र	अधिक गूदा एवं लंबी शेल्फ लाइफ
	बंगनपल्ली आम	आंध्र प्रदेश	मनमोहक स्वाद एवं सुगंध
	जर्दालू आम	बिहार	पतला छिलका एवं सुगंध
	मंखुराड आम	गोवा	विशिष्ट स्थानीय गुणवत्ता
	बनारसी लंगड़ा आम	उत्तर प्रदेश	विशिष्ट स्वाद एवं गुणवत्ता
	रीवा सुन्दरजा आम	मध्य प्रदेश	विशिष्ट स्वाद एवं सुगंध
	कारी इशाद आम	कर्नाटक	विशेष स्वाद
	कुट्टियाट्टूर आम	केरल	शीघ्र पुष्पण, चिकनी त्वचा एवं हल्की मिठास
	देवगढ़ अल्फांसो आम	महाराष्ट्र	विशिष्ट स्वाद एवं सुगंध
नीबूवर्गीय फल	कुर्ग संतरा	कर्नाटक	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	नागपुर संतरा	महाराष्ट्र	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	अरुणाचल संतरा	अरुणाचल प्रदेश	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	खासी संतरा	मेघालय	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	जालना मौसंबी	महाराष्ट्र	अधिक मिठास एवं रस
	देवनहल्ली चकोतरा	कर्नाटक	गुलाबी गूदा
	कचाई लेमन	मणिपुर	स्वाद, विटामिन एवं रस की अधिकता
	मेमांग नारंग	मेघालय	औषधीय महत्व
	इंडी नीबू	कर्नाटक	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	पुलियांगुड़ी नीबू	तमिलनाडु	अधिक रस एवं अम्लता
केला	नंजनगुड रसबाले केला	कर्नाटक	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
	विरुपाक्षी हिल केला	तमिलनाडु	स्वाद एवं लंबी शेल्फ लाइफ
	सिरुमलाई हिल केला	केरल	स्वाद एवं लंबी शेल्फ लाइफ
	कमलापुर लाल केला	कर्नाटक	औषधीय गुण एवं कम शर्करा
	चेंगलिकोडन नेंद्रन केला	केरल	स्वाद, गुच्छे का आकार एवं फल रंग
	जलगाँव केला	महाराष्ट्र	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता एवं शेल्फ लाइफ
	कन्याकुमारी मट्टी केला	तमिलनाडु	विशिष्ट मिठास एवं छोटा आकार
	म्यंदोली केला	गोवा	स्थानीय गुणवत्ता एवं पारंपरिक खेती
अंगूर	नासिक अंगूर	महाराष्ट्र	बेरी रंग एवं गुणवत्ता
	बैंगलोर ब्लू अंगूर	कर्नाटक	विशिष्ट फॉक्सी फ्लेवर
	सांगली किशमिश	महाराष्ट्र	उच्च गुणवत्ता
	कुंबम पन्नीर थ्राचाई	तमिलनाडु	विशिष्ट स्वाद
अनन्नास	त्रिपुरा क्वीन अनानास	त्रिपुरा	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता

सारणी जारी...

क्रमश...

	वाझाकुलम क्वीन अनन्नास	केरल	अधिक मिठास एवं सुगंध
लीची	तेजपुर लीची	असम	आकर्षक फल रंग एवं उत्तम गूदा
	शाही लीची	बिहार	उच्च गुणवत्ता वाला गूदा एवं सुगंध
स्ट्रॉबेरी	महाबलेश्वर स्ट्रॉबेरी	महाराष्ट्र	उत्कृष्ट फल गुणवत्ता
अमरूद	इलाहाबाद सुर्खा अमरूद	उत्तर प्रदेश	गूदे का रंग एवं गुणवत्ता
सीताफल	बीड़ सीताफल	महाराष्ट्र	अधिक मिठास
अंजीर	पुरंदर अंजीर	महाराष्ट्र	आकार, रंग, स्वाद एवं लौह तत्व की अधिकता
अनार	सोलापुर अनार	महाराष्ट्र	उत्कृष्ट गुणवत्ता एवं एंटीऑक्सीडेंट गुण
चीकू	दहानू घोलवड़ चीकू	महाराष्ट्र	विशिष्ट स्वाद
कोकम	सिंधुदुर्ग एवं रत्नागिरी कोकम	महाराष्ट्र	विशिष्ट स्थानीय गुणवत्ता
आँवला	प्रतापगढ़ आँवला	उत्तर प्रदेश	उच्च गुणवत्ता
मखाना	मिथिला मखाना	बिहार	विशिष्ट गुणवत्ता
खुबानी	लद्दाख रक्तसे कार्पो खुबानी	लद्दाख	विशिष्ट स्वाद एवं गुणवत्ता
कटहल	पनरुति कटहल	तमिलनाडु	मीठा स्वाद, सुदृढ़ कोए एवं तीव्र सुगंध

भावी संभावनाएं

भारत में भौगोलिक संकेतक (जीआई) प्राप्त फलों का भविष्य अत्यंत आशाजनक है। जीआई प्रणाली फलों की विशिष्ट पहचान, गुणवत्ता एवं विश्वसनीयता को स्थापित कर उन्हें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में विशेष स्थान प्रदान करती है। इससे उत्पादों की मांग बढ़ने के साथ किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होने तथा उत्पादन क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने की संभावना है।

जीआई प्राप्त भारतीय फलों में निर्यात की व्यापक संभावनाएँ हैं। वैश्विक स्तर पर उच्च गुणवत्ता एवं विशिष्ट पहचान वाले उत्पादों की मांग लगातार बढ़ रही है, जिससे भारतीय फलों की अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुँच आसान हो रही है। इससे विदेशी मुद्रा आय बढ़ने के साथ देश के आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहन मिलेगा।

भौगोलिक संकेतक उपभोक्ताओं के बीच विश्वास स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सुनिश्चित करता है कि उपभोक्ताओं को वास्तविक, सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण उत्पाद प्राप्त हों। साथ ही, यह प्रणाली पारंपरिक फल किस्मों, स्थानीय कृषि ज्ञान एवं जैव विविधता के संरक्षण में भी सहायक है, जिससे देसी फल प्रजातियों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण की दृष्टि से भी जीआई महत्वपूर्ण है, क्योंकि अनेक फल विशेष क्षेत्रों की परंपराओं और स्थानीय पहचान से जुड़े होते हैं। इसके अतिरिक्त, कानूनी संरक्षण के माध्यम से उत्पादों के नाम और पहचान के अनाधिकृत उपयोग को रोका जा सकता है। यद्यपि जागरूकता की कमी, गुणवत्ता नियंत्रण, निर्यात बाधाएँ एवं लाभों के असमान वितरण जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं, फिर भी उचित सरकारी सहयोग, प्रभावी नीतियों एवं बाजार सुविधाओं के माध्यम से जीआई प्राप्त फल भविष्य में किसानों की आय, ग्रामीण विकास तथा भारतीय कृषि की वैश्विक पहचान को नई मजबूती प्रदान कर सकते हैं।

केला प्रजाति सिरूमलाई हिल

केला प्रजाति चैंगलिकोडन नेंद्रन

निवेदन

लेखक बंधु *फल फूल* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो मौलिक होने के साथ जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं। लेख भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

–संपादक

पोषण से भरपूर शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रीय फल

अरविंद कुमार सिंह, डी. एस. मिश्रा, जगदीश राणे और **आनंद साहिल**

भारतीय शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र, देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसमें मुख्यत: राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश इत्यादि क्षेत्र शामिल हैं। ये क्षेत्र अत्यंत कठोर एवं विषम जलवायु परिस्थितियों के लिए जाने जाते हैं। यहाँ वार्षिक वर्षा केवल 100 से 500 मि.मी. के बीच होती है तथा वर्षा का वितरण अत्यंत अनियमित रहता है। वर्षा की परिवर्तनशीलता का गुणांक 40 से 70 प्रतिशत तक पाया जाता है, जिससे कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, इस क्षेत्र में तापमान 1° से 48° से. तक पहुँच जाता है, तेज हवाएँ चलती हैं तथा मृदा प्राय: रेतीली, कंकरीली, पथरीली प्रकृति की होती हैं। इन मृदा की जल धारण क्षमता अत्यंत कम होती है तथा इनमें जैविक पदार्थ एवं पोषक तत्वों की कमी पाई जाती है। कई स्थानों पर मिट्टी अत्यधिक गहरी अथवा उथली होती है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। इसके साथ ही भूमिगत जल प्राय: गहरे स्तर पर उपलब्ध होता है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में केवल वे ही फल फसलें सफलतापूर्वक विकसित हो सकती हैं, जो कम पानी, अधिक तापमान एवं लवणीय परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती हैं।

शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के सामने सबसे बड़ी चुनौती सीमित जल संसाधनों के साथ अधिक उत्पादन प्राप्त करना है। बढ़ते जैविक एवं अजैविक दबावों के कारण कृषि प्रणाली पर अतिरिक्त भार पड़ रहा है। उच्च तापमान, अनियमित वर्षा तथा तेज हवाएँ फसल उत्पादकता को सीमित करती हैं, परंतु यही परिस्थितियाँ कुछ विशेष फल फसलों की उत्कृष्ट गुणवत्ता के लिए अनुकूल सिद्ध होती हैं।

इन क्षेत्रों में बेल, बेर, आँवला, फालसा, शहतूत, करौंदा तथा लसोड़ा जैसी फल फसलें सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं। ये फसलें न केवल कम पानी में अच्छी उपज देती हैं, बल्कि इनमें पोषण एवं औषधीय गुण भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, आँवला विटामिन 'सी' का उत्कृष्ट स्रोत है, जबकि बेल एवं बेर सूखा सहनशीलता के कारण शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त माने जाते हैं।

वर्तमान समय में यह अनुभव किया जा रहा है कि पारंपरिक कृषि क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि की संभावनाएँ सीमित हो चुकी हैं। ऐसी स्थिति में शुष्क क्षेत्रों में बागवानी फसलों का विकास कृषि क्षेत्र के लिए एक नई दिशा प्रदान कर सकता है। नई उन्नत किस्मों के विकास, आधुनिक कृषि तकनीकों के उपयोग तथा

केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र (भाकृअनुप-सीआईएएच) गोधरा-वडोदरा राजमार्ग, वेजलपुर-389340, गोधरा, पंचमहल, गुजरात

वैज्ञानिक प्रबंधन के कारण शुष्क बागवानी फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन क्षमता में कई गुना वृद्धि हुई है।

शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली कम उपयोगी फल फसलें पोषण, औषधीय गुणों तथा आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये फसलें कम वर्षा, उच्च तापमान एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने की क्षमता रखती हैं।

इनमें बेल, आँवला, करौंदा, फालसा, कैथ, महुआ, इमली एवं लसोड़ा जैसी फसलें किसानों के लिए आय का अच्छा स्रोत बन सकती हैं। वैज्ञानिक खेती पद्धतियों को अपनाकर इन फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। साथ ही, इन फसलों का संरक्षण एवं व्यावसायिक उपयोग शुष्क क्षेत्रों की कृषि एवं पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बेल-थार गौरी के पौष्टिक फल

बेल

बेल, भारत का एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण औषधीय फल वृक्ष है, जिसका उल्लेख वैदिक, बौद्ध एवं जैन साहित्य में मिलता है। यह रूटेसी कुल का पौधा है तथा इसे बेल, बिल्व, श्रीफल एवं दिव्य फल जैसे नामों से भी जाना जाता है। बेल की खेती मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, ओडिशा एवं छत्तीसगढ़ के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में की जाती है।

बेल के फल, पत्तियाँ, जड़, छाल एवं बीज सभी औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं तथा आयुर्वेद में इनका उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता है। इसके फल में एंटीऑक्सीडेंट, फिनोलिक यौगिक एवं विटामिन पाए जाते हैं, जो पाचन तंत्र, हृदय एवं स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। पके फलों का उपयोग स्क्वैश, जैम, नेक्टर, टॉफी, आरटीएस एवं पाउडर जैसे मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है, जबकि कच्चे फलों से मुरब्बा एवं अचार बनाया जाता है। अर्धपके फल अतिसार एवं पेचिश के उपचार में उपयोगी माने जाते हैं तथा इसे पेट संबंधी रोगों के लिए रामबाण फल माना जाता है।

बेल का वृक्ष सूखा, उच्च तापमान एवं लवणीय मिट्टियों को सहन करने की क्षमता रखता है, इसलिए यह शुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त फल फसल है। इसकी खेती अच्छी जल निकास वाली दोमट भूमि में की जाती है तथा पौधों को सामान्यतः 8×8 मीटर दूरी पर लगाया जाता है तथा सघन बागवानी के लिए 5×5 मी. पर लगाया जाता है जिसके लिए गोमा यशी सबसे उपयुक्त प्रजाति है। कलम अथवा ग्राफ्टेड पौधों में तीसरे वर्ष से फल लगना प्रारंभ हो जाता है तथा 10 वर्ष की आयु में एक वृक्ष से लगभग 80-160 किलोग्राम फल प्राप्त हो सकते हैं।

फल पकने में लगभग 9-11 माह का समय लेते हैं तथा परिपक्व फलों की तुड़ाई सावधानीपूर्वक डंठल सहित करनी चाहिए। 'गोमा यशी', 'थार दिव्या', 'थार प्रकृति', 'थार भव्या', 'थार गौरी', 'थार शिवांगी',

चुनौतियों का समाधान

शुष्क क्षेत्रों में उद्यानिकी विकास के समक्ष अनेक समस्याएँ भी विद्यमान हैं। इनमें सबसे प्रमुख समस्या गुणवत्तापूर्ण बीज एवं पौध सामग्री की कमी है। फल फसलों में उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादन के लिए उत्तम रोपण सामग्री अत्यंत आवश्यक होती है। यदि किसानों को प्रमाणित एवं गुणवत्तापूर्ण पौध सामग्री समय पर उपलब्ध हो सके, तो उत्पादन एवं उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। कटाई उपरांत प्रबंधन भी शुष्क क्षेत्रों की एक महत्वपूर्ण चुनौती है। फलों की ग्रेडिंग, पैकिंग, भंडारण, परिवहन एवं विपणन के दौरान भारी मात्रा में हानि होती है। वर्तमान में प्रसंस्करण अवसंरचना की कमजोरी के कारण कच्चे माल का समुचित उपयोग नहीं हो पाता, जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। यदि आधुनिक प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना की जाए तथा मूल्य संवर्धन पर विशेष ध्यान दिया जाए, तो किसानों की आय में वृद्धि संभव है। विपणन व्यवस्था की कमजोरी भी उद्यानिकी विकास में एक प्रमुख बाधा है। किसानों को अपने उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता, जिसके कारण वे उद्यानिकी फसलों को अपनाने में संकोच करते हैं। संगठित विपणन प्रणाली, कोल्ड स्टोरेज, परिवहन सुविधाएँ तथा कृषि आधारित उद्योगों का विकास इस समस्या के समाधान में सहायक हो सकता है।

उद्यानिकी क्षेत्र में एग्रीबिजनेस की अपार संभावनाएँ हैं। फल प्रसंस्करण, जैम, जेली, स्क्वैश, कैंडी तथा अन्य मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, उत्पाद विविधीकरण एवं निर्यात को बढ़ावा देकर किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के कृषकों के समक्ष उचित भंडारण सुविधाओं का अभाव, ग्रेडिंग एवं पैकेजिंग संबंधी ज्ञान की कमी तथा आधुनिक उपकरणों की अनुपलब्धता भी बड़ी समस्याएँ हैं। इसलिए किसानों को प्रशिक्षण, तकनीकी मार्गदर्शन एवं आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है।

एन.बी.-5, एन.बी.-7, एन.बी.-9, सी.आई.एस.एच. बेल-1, सी.आई.एस.एच. बेल-2 एवं 'थार नीलकंठ' जैसी किस्में अधिक उत्पादन एवं उत्तम गुणवत्ता के लिए शुष्क क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती हेतु उपयुक्त पाई गई हैं।

जामुन

यह एक महत्वपूर्ण पोषक एवं औषधीय फल वृक्ष है, जिसका मूल स्थान भारत माना जाता है तथा यह उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। इसके फल आयरन, शर्करा, खनिज, प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट से भरपूर होते हैं तथा पके फलों का उपयोग ताजा सेवन के साथ-साथ जैली, जैम, स्क्वैश, सिरका, वाइन, आईसक्रीम एवं अचार बनाने में किया जाता है। जामुन का फल हल्के अम्लीय एवं मसालेदार स्वाद वाला होता है तथा इसका स्क्वैश गर्मियों में अत्यंत शीतल एवं ताजगी प्रदान करने वाला पेय माना जाता है। इसके फल, बीज एवं सिरका औषधीय गुणों से युक्त होते हैं तथा मधुमेह, हृदय रोग, यकृत विकार एवं पाचन संबंधी समस्याओं के उपचार में उपयोगी माने जाते हैं। जामुन के बीजों में जम्बोसिन एवं ग्लाइकोसाइड जैसे तत्व पाए जाते हैं, जो रक्त में शर्करा नियंत्रण में सहायक होते हैं। यह वृक्ष लवणीय, क्षारीय एवं जलभराव वाली भूमि में भी सफलतापूर्वक वृद्धि करता है तथा 10.5 पी.एच. तक की क्षारीय मिट्टी एवं 350-500 मि.मी. वर्षा वाले शुष्क क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है। जामुन की लकड़ी अत्यंत मजबूत एवं जलरोधी होती है, जिसका उपयोग रेलवे स्लीपर, कृषि उपकरण एवं भवन निर्माण कार्यों में किया जाता है। 'गोमा प्रियंका', 'थार क्रांति', 'सी.आई.एस.एच. जे-37' एवं 'सी.आई.एस.एच. जे-42' इसकी व्यावसायिक खेती हेतु उपयुक्त उन्नत किस्में हैं।

गुणकारी कैथ

गुच्छों में इमली

इमली

इमली, लेग्यूमिनोसी कुल की एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी फल वृक्ष प्रजाति है, जिसे सामाजिक वानिकी एवं कृषि वानिकी के लिए अत्यंत उपयोगी माना जाता है। शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में इसकी सूखा सहनशीलता एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में वृद्धि करने की क्षमता के कारण बंजर भूमि विकास में इसका विशेष महत्व है।

इमली के फल प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं खनिजों से भरपूर होते हैं तथा इसके गूदे का उपयोग जूस, जैम, सिरप, कैंडी, सॉस एवं औषधीय उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। आयुर्वेद में इमली के गूदे को शीतल, पाचनवर्धक, रेचक एवं ज्वरनाशक गुणों वाला माना गया है, जबकि इसकी पत्तियाँ पशु चारे के रूप में उपयोगी होती हैं।

इमली की खेती गहरी, अच्छी जल निकास वाली दोमट अथवा जलोढ़ मिट्टी में सर्वोत्तम होती है, हालांकि यह लवणीय, क्षारीय एवं पथरीली भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। यह वृक्ष उच्च तापमान (48° तक) एवं सूखे को सहन करने में सक्षम है तथा 500-1500 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी वृद्धि करता है।

भारत में विभिन्न उन्नत किस्में जैसे पी.के. एम.-1, अजंता, उरीगाम, प्रचलित हैं, जबकि 'गोमा प्रतीक एवं थार रश्मि' किस्म अधिक उत्पादन एवं बड़े फलों के लिए उपयुक्त पाई गई है। एक परिपक्व इमली वृक्ष से 150-200 किलोग्राम तक फल प्राप्त हो सकते हैं, जिससे यह शुष्क क्षेत्रों के किसानों के लिए आय का महत्वपूर्ण स्रोत बनती जा रही है।

कैथ

कैथ रूटेसी कुल का एक महत्वपूर्ण शुष्क क्षेत्रीय फल वृक्ष है, जो भारत के मैदानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। यह मुख्यत: गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक तथा राजस्थान के अरावली एवं हाड़ौती क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाया जाता है। यह एक कठोर, पतझड़ी एवं काँटेदार वृक्ष है, जिसके फल गोलाकार, कठोर छिलके वाले तथा सुगंधित मीठे गूदे से युक्त होते हैं। इसके पके फलों का उपयोग, शरबत, जैली एवं अन्य प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। कैथ के पुष्प हल्के लाल रंग के होते हैं तथा फल बहुबीजी बेरी प्रकार के होते हैं, जिनमें गूदे के भीतर बीज उपस्थित रहते हैं। इसकी खेती शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में अच्छी जल निकास वाली भूमि में की जाती है तथा ग्राफ्टेड पौधों को सामान्यत: 5x5 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। कलम द्वारा तैयार पौधे रोपण के लगभग तीसरे वर्ष से फल देना प्रारंभ कर देते हैं तथा एक परिपक्व वृक्ष से लगभग 200-450 फल प्राप्त हो सकते हैं।

चिरौंजी के परिपक्व फल

'थार गौरव' एवं 'थार प्रभा' इसकी उन्नत किस्में हैं, जिन्हें अधिक उत्पादन, बड़े फलों एवं शीघ्र फलन के लिए विकसित किया गया है, जो अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अनुकूल पाई गई है।

महुआ

यह एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी एवं सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी वृक्ष है, जिसकी खेती मुख्यत: उत्तर एवं मध्य भारत के मैदानी एवं वन क्षेत्रों में की जाती है। यह उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, बिहार, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश एवं गुजरात में व्यापक रूप से पाया जाता है। महुआ के पुष्प, फल, बीज एवं लकड़ी सभी आर्थिक रूप से उपयोगी होते हैं तथा इसके पुष्प शर्करा, विटामिन एवं खनिजों से भरपूर होते हैं। इसके फूलों का उपयोग पारंपरिक पेय एवं आसवित मदिरा निर्माण में, जबकि फलों का उपयोग कच्चे एवं पके दोनों रूपों में किया जाता है।

बहुउपयोगी खिरनी

महुआ के बीजों से प्राप्त तेल में लिनोलिक एवं असंतृप्त वसीय अम्ल पाए जाते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं तथा साबुन, मोमबत्ती एवं स्नेहक उद्योगों में उपयोग किए जाते हैं। इसकी पत्तियों का उपयोग दोना-पत्तल बनाने में तथा तेल निष्कर्षण के बाद बची खली का उपयोग जैविक खाद एवं कीटनाशी के रूप में किया जाता है।

महुआ की खेती शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में अच्छी जल निकास वाली भूमि में की जाती है तथा इसका प्रवर्धन मुख्यत: बीज द्वारा किया जाता है; यह सूखा सहनशील वृक्ष है। 'थार मधु' इसकी एक उन्नत एवं अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है, जिसे शुष्क क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती हेतु विकसित किया गया है।

खिरनी

यह उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय भारत का एक महत्वपूर्ण अल्प-उपयोगित फल वृक्ष है, जिसे बंजर एवं अनउर्वर भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसे भारत के विभिन्न राज्यों में आदिवासी समुदाय 'खिरनी' एवं 'रायन' नाम से जानते हैं तथा इसके ताजा फलों का स्थानीय स्तर पर व्यापक उपयोग किया जाता है।

खिरनी के फल स्वाद में मीठे होते हैं तथा इनमें आयरन, खनिज, शर्करा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

इसके बीजों को भूनकर भी खाया जाता है, जिनका स्वाद मूंगफली जैसा होता है, हालांकि इनमें अल्कलॉइड होने के कारण सीमित मात्रा में सेवन करना चाहिए। यह एक मध्यम आकार का सदाबहार वृक्ष है, जिसका फैलाव अधिक होता है तथा इसे चीकू (सपोटा) के लिए सूखा सहनशील रूटस्टॉक के रूप में भी उपयोग किया जाता है। खिरनी का पौधा सूखा एवं अधिक वर्षा, दोनों परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखता है, इसलिए यह शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसल मानी जाती है।

इसकी खेती अच्छी जल निकास वाली भूमि में की जाती है तथा पौधों का प्रवर्धन मुख्यत: बीज एवं ग्राफ्टिंग द्वारा किया जाता है। 'थार ऋतुराज' देश की पहली उन्नत किस्म है, जो शुष्क क्षेत्रों की परिस्थितियों में बेहतर वृद्धि एवं उत्पादन देने के लिए विकसित की गई है।

औषधीय गुणों से भरपूर करौंदा

चिरौंजी

यह शुष्क क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी वृक्ष है, जिसका उपयोग कृषि वानिकी एवं सामाजिक वानिकी में व्यापक रूप से किया जाता है। यह मुख्यत: उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, बिहार, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश एवं गुजरात के शुष्क पर्णपाती वनों में पाया जाता है। चिरौंजी का वृक्ष अत्यंत कठोर एवं सूखा सहनशील होता है तथा यह पथरीली, कंकरीली, लवणीय एवं क्षारीय भूमि में भी सफलतापूर्वक वृद्धि करता है।

इसके पके फल स्वादिष्ट होते हैं, जबकि बीज की गिरी अत्यंत पौष्टिक एवं प्रोटीन तथा तेल से भरपूर होती है, जिसका उपयोग मिठाइयों एवं विभिन्न खाद्य उत्पादों में किया जाता है। इसकी लकड़ी भी उपयोगी एवं गुणवत्तायुक्त होती है, जिसका उपयोग विभिन्न घरेलू कार्यों में किया जाता है।

चिरौंजी की खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली गहरी दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है तथा इसका प्रवर्धन मुख्यत: सॉफ्टवुड ग्राफ्टिंग द्वारा किया जाता है। इसमें जनवरी-फरवरी में पुष्पण तथा इसमे फल अप्रैल-मई में पक कर तैयार हो जाते हैं। 'थार प्रिया' इसकी उन्नत किस्म है, जो शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

वनों की कटाई एवं प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के कारण इस फसल में आनुवंशिक विविधता तेजी से घट रही है, इसलिए इसके संरक्षण एवं व्यावसायिक विस्तार की आवश्यकता है। इन दिनों अर्धशुष्क क्षेत्रों मे इसकी मांग बढ़ती जा रही है।

लसोड़ा

लसोड़ा एक महत्वपूर्ण अल्प-उपयोगित फल वृक्ष है, जिसे इंडियन चेरी, गोंदा, लहसुआ एवं गूंदा के नाम से भी जाना जाता है। यह मुख्यत: गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र में बंजर भूमि, खेतों की मेड़ों तथा सड़क किनारे प्राकृतिक रूप से उगता है। लसोड़ा गर्म जलवायु की फसल है तथा पाले के प्रति संवेदनशील होता है, इसलिए इसकी खेती शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। इसके फल औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं तथा मूत्र संबंधी रोगों, उच्च रक्तचाप एवं मधुमेह में लाभकारी माने जाते हैं। लसोड़ा का वृक्ष 5-8 मीटर ऊँचा, अधिक शाखायुक्त होता है तथा इसके फल चिपचिपे, मीठे एवं स्वादिष्ट गूदे वाले होते हैं, जिनका उपयोग सब्जी, अचार एवं पेय पदार्थों में किया जाता है। इसकी खेती अच्छी जल निकास वाली भूमि में बीज अथवा कलम द्वारा की जाती है तथा पौधों को सामान्यत: 6x6 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। एक पूर्ण विकसित वृक्ष से लगभग 30-45 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं तथा वर्षा ऋतु के बाद इसमें पुष्पण एवं लगभग दो माह बाद फलन होता है। 'थार बोल्ड' इसकी उन्नत एवं अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है, जो पूरे भारत में खेती हेतु उपयुक्त मानी जाती है।

लसोड़ा की फलन अवस्था

बहुउपयोगी लसोड़ा

करौंदा

मरूस्थल में उपयोगी कैर

करौंदा एपोसाइनेसी कुल का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी फलदार झाड़ीदार पौधा है, जिसका मूल स्थान भारत माना जाता है। भारत में इसकी खेती मुख्यतः बिहार, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, गुजरात, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में की जाती है।

यह शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों की अत्यंत सहनशील फसल है तथा उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में किसी भी प्रकार की मिट्टी में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

व्यावसायिक खेती हेतु थार कमल, पंत मनोहर, पंत सुवर्णा, कोंकण बोल्ड एवं पंत सुदर्शन जैसी उन्नत किस्में उपलब्ध हैं। इसके फल हरे, गुलाबी एवं सफेद रंग के होते हैं तथा इनमें प्रोटीन, वसा, खनिज, रेशा, खास करके लौह तत्व एवं कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

करौंदा के परिपक्व फलों का उपयोग अचार, कैंडी एवं अन्य प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है।

इसकी खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली भूमि उपयुक्त होती है तथा पौधों को सामान्यतः वर्षा ऋतु में 2–3 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। बीजजनित प्रवर्धन के कारण फलों के आकार, रंग, गूदे की गुणवत्ता एवं उत्पादन में व्यापक विविधता पाई जाती है, जिससे चयन द्वारा उन्नत किस्मों के विकास की अच्छी संभावनाएँ हैं।

फालसा

फालसा टिलिएसी कुल का एक महत्वपूर्ण अल्प-उपयोगित फल वृक्ष है, जिसे भारत की प्राचीन फल फसलों में विशेष स्थान प्राप्त है। आयुर्वेदिक साहित्य में इसके फलों के औषधीय गुणों का उल्लेख मिलता है, जिसके कारण इसका उपयोग पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में भी किया जाता रहा है। यह फसल कम वर्षा एवं सीमित जल उपलब्धता वाली परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, इसलिए शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी जाती है। फालसा के पके फल बैंगनी से गहरे काले रंग के होते हैं तथा इनमें विटामिन ए, विटामिन सी एवं विभिन्न खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसके फल हल्के अम्लीय स्वाद वाले होते हैं, जिनका उपयोग शीतल पेय, जूस, स्क्वैश, सिरप एवं कैंडी जैसे प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है।

फालसा का पौधा झाड़ीदार स्वरूप का होता है, जिसकी शाखाएँ लंबी, पतली एवं झुकी हुई होती हैं। वसंत ऋतु में इस पर पीले-नारंगी रंग के आकर्षक पुष्प आते हैं। यह फसल अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी में सर्वोत्तम उत्पादन देती है, हालांकि इसे क्षारीय एवं अनुपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

फालसा उपोष्णकटिबंधीय जलवायु की फसल है तथा भारत के अधिकांश भागों में इसकी खेती की जाती है। फालसा में वार्षिक छंटाई अत्यंत आवश्यक कृषि क्रिया है, क्योंकि इसके फल वर्तमान मौसम की नई शाखाओं पर लगते हैं। उचित छंटाई से नई वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है तथा फल उत्पादन एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

फलों की तुड़ाई गर्मियों के दौरान क्रमिक रूप से की जाती है और एक परिपक्व पौधे से सामान्यतः 7–9 किलोग्राम तक फल प्राप्त होते हैं। चूँकि फालसा के फल अत्यंत नाशवान होते हैं, इसलिए उनकी शीघ्र विपणन अथवा प्रसंस्करण की आवश्यकता होती है।

फालसा की प्रजाति-थार प्रगति

कैर

कैर शुष्क एवं मरुस्थलीय क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी पौधा है, जो भारत, अफ्रीका एवं सऊदी अरब के शुष्क भागों में पाया जाता है। इसे राजस्थान में कैर, उत्तर प्रदेश में करील, गुजरात में केर तथा हरियाणा एवं पंजाब में डेला के नाम से जाना जाता है। यह अत्यंत कठोर एवं सूखा सहनशील झाड़ीदार पौधा है, जो रेतीली भूमि, बालू के टीलों, पथरीली एवं लवणीय भूमि में भी सफलतापूर्वक उगता है तथा मृदा अपरदन रोकने में सहायक होता है।

कैर में फलन की विविधता पाई जाती है तथा इसके फलों के आकार, रंग एवं गूदे की मात्रा में व्यापक आनुवंशिक भिन्नता देखने को मिलती है। इसके पौधे काँटेदार, पत्तीविहीन एवं अधिक शाखायुक्त होते हैं, जिनमें वर्ष में दो बार मार्च-अप्रैल एवं सितंबर-अक्टूबर में पुष्पन तथा मई-जून एवं नवंबर-दिसंबर में फलन होता है। कैर के कच्चे एवं पके फल कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज तथा विटामिन ए एवं सी से भरपूर होते हैं तथा इनका उपयोग सब्जी, अचार एवं सूखे उत्पादों के रूप में किया जाता है।

इसकी खेती बीज एवं कलम द्वारा की जाती है तथा पौधों को सामान्यतः वर्षा ऋतु में 4-5 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। यह कम सिंचाई एवं न्यूनतम देखभाल में भी अच्छा उत्पादन देता है। एक परिपक्व कैर पौधे से लगभग 10-20 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं तथा यह शुष्क क्षेत्रों में किसानों के लिए आय एवं पोषण का महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हो रहा है।

शहतूत

शहतूत मोरेसी कुल का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी फल एवं रेशम उत्पादन हेतु

उपयोगी वृक्ष है, जिसका मूल स्थान एशिया माना जाता है। विश्व स्तर पर शहतूत की पत्तियों का प्रमुख उपयोग रेशम कीट पालन (सेरिकल्चर) में होता है, क्योंकि रेशम के कीट इसकी पत्तियों पर ही निर्भर रहते हैं।यह एक तीव्र वृद्धि करने वाला पतझड़ी एवं बहुवर्षीय पौधा है, जिसकी जड़ प्रणाली गहरी होती है तथा यह सूखा, प्रदूषण एवं कम उर्वर मृदा को सहन करने की क्षमता रखता है। भारत में शहतूत को "कल्पवृक्ष" कहा जाता है, क्योंकि इसके पत्ते, फल, शाखाएँ एवं लकड़ी सभी उपयोगी होते हैं।

थार हरित एवं थार लोहित शहतूत की उन्नत किस्में हैं, जो शुष्क क्षेत्रों में खेती हेतु उपयुक्त मानी जाती हैं तथा किसानों को अधिक लाभ प्रदान करती हैं। शहतूत की खेती अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी में की जाती है तथा पौधों को सामान्यतः वर्षा ऋतु में 3×3 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। यदि इसकी खेती रेशम उत्पादन हेतु की जाए तो प्रति वर्ष 30-35 टन प्रति हैक्टर पत्तियों का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, जबकि छंटाई के बाद शाखाओं का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। शुष्क एवं अनुपजाऊ क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगने के कारण शहतूत को भविष्य की महत्वपूर्ण ऊर्जा एवं बहुउद्देशीय फसल के रूप में माना जा रहा है।

स्वादिष्ट शहतूत

जंगल जलेबी

इसे जंगल जलेबी या विलायती इमली भी कहा जाता है। यह एक स्वादिष्ट और पौष्टिक फल है। इसमें विटामिन सी, आयरन और एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होते हैं। इसका सेवन पाचन तंत्र को मजबूत करता है और कब्ज जैसी समस्याओं से राहत मे कारगर है। यह शरीर को तुरंत ऊर्जा प्रदान करता है तथा थकान कम करने में मदद करता है। इसकी खेती के लिए गर्म एवं शुष्क जलवायु सबसे उपयुक्त मानी जाती है। पौधे बीज या कलम विधि से तैयार किए जाते हैं और अच्छी जल निकासी वाली दोमट मिट्टी में लगाए जाते हैं।

पौधों के बीच लगभग 5 से 6 मीटर की दूरी रखी जाती है ताकि उनका विकास सही ढंग से हो सके। नियमित सिंचाई, जैविक खाद तथा समय-समय पर छंटाई करने से उत्पादन में वृद्धि होती है। यह पेड़ कम देखभाल में भी लंबे समय तक फल देता है और किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध होता है। इसके फल का उपयोग खाने के साथ-साथ औषधीय उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है।

भारतीय शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में उद्यानिकी फसलों के विकास की अपार संभावनाएँ विद्यमान हैं। यदि जल प्रबंधन,

जंगल जलेबी

गुणवत्तापूर्ण पौध सामग्री, आधुनिक कृषि तकनीकों, प्रसंस्करण एवं विपणन सुविधाओं पर समुचित ध्यान दिया जाए, तो ये क्षेत्र न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं, बल्कि किसानों की आय एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ बना सकते हैं। शुष्क क्षेत्रीय उद्यानिकी भविष्य में सतत कृषि विकास एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

पीलू

पीलू या टूथब्रश ट्री साल्वाडोरेसी कुल का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी वृक्ष है, जो शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। यह एक सदाबहार, अधिक शाखायुक्त वृक्ष या झाड़ी है, जिसकी छाल धूसर रंग की एवं गहरी दरारों वाली होती है तथा इसकी खेती मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब तथा दक्षिण भारत के कुछ भागों में की जाती है। पीलू अत्यधिक लवणीय एवं क्षारीय भूमि में भी सफलतापूर्वक वृद्धि करता है और इसे पवनरोधक, आश्रय पट्टी तथा बंजर भूमि के वनीकरण हेतु उपयोगी माना जाता है। इसके फल स्वाद में मीठे, सुगंधित एवं हल्के तीखे होते हैं, जिन्हें ताजा, सुखाकर अथवा पेय उत्पादों के निर्माण में उपयोग किया जाता है। पौधे की पत्तियों एवं कोमल शाखाओं का उपयोग सब्जी एवं सलाद के रूप में किया जाता है, जबकि बीजों से प्राप्त तेल साबुन एवं डिटर्जेंट उद्योग में उपयोगी होता है। पीलू में जनवरी से मार्च तक पुष्पन तथा मई माह में फलन होता है तथा एक परिपक्व वृक्ष से लगभग 10-15 किलोग्राम ताजे फल प्राप्त होते हैं। इसकी खेती बीज द्वारा की जाती है तथा पौधों को वर्षा ऋतु में 5-6 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है; यह कम पानी एवं न्यूनतम देखभाल में भी अच्छी वृद्धि करता है। शुष्क क्षेत्रों में इसकी उच्च सहनशीलता, पोषणीय महत्व एवं औद्योगिक उपयोगिता के कारण पीलू भविष्य की महत्वपूर्ण फल एवं वानिकी फसल के रूप में उभर रहा है।

कटहल की उन्नत किस्मों-सिद्दू और शंकरा से बढ़ती समृद्धि

करुणाकरण जी., एम. आर. दिनेश, कानुप्रिया, सी. अरिवलगन, एम. हर्ष कुमार, एच. वी. प्रीति सिंह, प्रीति पी., रंजीथा के. और **रुचिता टी.**

भारत, विश्व के प्रमुख कटहल उत्पादक देशों में से एक है। हमारे देश में कटहल केवल एक फल नहीं, बल्कि ग्रामीण संस्कृति, पोषण एवं आजीविका का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। विशेष रूप से दक्षिण भारत के अनेक राज्यों में इसे लंबे समय से घरेलू बगीचों एवं खेतों की मेड़ों पर उगाया जाता रहा है। इसके बावजूद, लंबे समय तक कटहल को एक "उपेक्षित फल" माना गया। वैज्ञानिक अनुसंधान, संगठित विपणन तथा गुणवत्तायुक्त पौध सामग्री के अभाव में इसकी व्यावसायिक संभावनाएँ पूरी तरह विकसित नहीं हो सकीं। इसी दौरान कर्नाटक के किसानों के खेतों से उभरी दो विशिष्ट कटहल किस्मों 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' ने कटहल उत्पादन के क्षेत्र में नई पहचान बनाई। तांबे-लाल रंग के आकर्षक कोये, उत्कृष्ट स्वाद, उच्च पोषण गुणवत्ता तथा बेहतर बाजार मूल्य के कारण ये किस्में तेजी से लोकप्रिय हुईं। इनकी सफलता केवल दो उन्नत किस्मों की कहानी नहीं है, बल्कि यह इस बात का प्रेरक उदाहरण भी है कि स्थानीय जैव विविधता को वैज्ञानिक सहयोग एवं किसान सहभागिता के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर नई पहचान दिलाई जा सकती है।

कटहल में पाई जाने वाली प्राकृतिक विविधता भारतीय कृषि जैव विविधता की अमूल्य धरोहर है। किसानों के खेतों और पारंपरिक बगीचों में आज भी ऐसी अनेक स्थानीय किस्में मौजूद हैं, जिनमें बेहतर स्वाद, आकर्षक रंग एवं उच्च पोषण गुण जैसी विशेषताएँ छिपी हुई हैं। भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु ने वर्ष 2014 से 2018 के दौरान दक्षिण कर्नाटक के पारंपरिक कटहल उत्पादक क्षेत्रों में व्यापक सर्वेक्षण किया। इस अध्ययन का उद्देश्य ऐसे श्रेष्ठ जर्मप्लाज्म की पहचान करना था, जिनमें आकर्षक रंग, बेहतर स्वाद और उच्च पोषण गुण मौजूद हों।

सर्वेक्षण के दौरान वैज्ञानिकों ने पाया कि बीज से तैयार पुराने कटहल बगीचों में अत्यधिक विविधता मौजूद है। पेड़ों की वृद्धि, फल के आकार, गूदे के रंग, स्वाद एवं सुगंध में उल्लेखनीय अंतर देखने को मिला। विभिन्न उद्यानिकी गुणों एवं उपभोक्ता पसंद के आधार पर लगभग 65 पेड़ों का चयन किया गया। अंततः दो पेड़ विशेष रूप से अलग दिखाई दिए।

भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, हेसरघट्टा लेक पोस्ट, बेंगलुरु - 560089, कर्नाटक

इनमें पहला पेड़ तुमकुरु जिले के किसान श्री एस. एस. परमेश के खेत में मिला, जबकि दूसरा पेड़ श्री शंकरैया के खेत में पाया गया। दोनों पेड़ों के फलों में चमकदार तांबे-लाल रंग के कोये थे, जो सामान्य पीले कटहल से बिल्कुल अलग दिखाई देते थे। वैज्ञानिक परीक्षणों में यह भी स्पष्ट हुआ कि इन किस्मों में पोषक तत्वों की मात्रा अधिक है। इन्हें क्रमशः 'सिद्दू' और 'शंकरा' नाम दिया गया।

जैव विविधता को आजीविका से जोड़ने का अभिनव मॉडल

भारत में अनेक स्थानीय फल किस्में वर्षों से किसानों के खेतों में संरक्षित हैं, किंतु अधिकांश मामलों में इनका आर्थिक लाभ किसानों तक नहीं पहुँच पाता। इस दिशा में भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु ने एक अभिनव मॉडल विकसित किया।

संस्थान ने 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' कटहल किस्मों को केवल वैज्ञानिक उपलब्धि तक सीमित न रखकर किसानों की आय बढ़ाने के प्रभावी माध्यम के रूप में विकसित किया। इन किस्मों का प्रचार-प्रसार शोध पत्रों, मीडिया, वेबसाइटों तथा कटहल विविधता मेलों के माध्यम से किया गया, जिससे किसानों एवं नर्सरी संचालकों के बीच इन पौधों की मांग तेजी से बढ़ी।

संस्थान द्वारा लाभ-साझेदारी मॉडल भी लागू किया गया, जिसके अंतर्गत पौध बिक्री से प्राप्त आय का 75 प्रतिशत हिस्सा किसान तथा 25 प्रतिशत संस्थान को दिया जाता है। यह मॉडल किसानों को उनकी संरक्षित जैव विविधता का उचित आर्थिक लाभ दिलवाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। इसके साथ ही, श्री एस. एस. परमेश एवं श्री शंकरैया को उच्च गुणवत्ता वाले कलम पौधे तैयार करने का प्रशिक्षण प्रदान किया गया। वर्तमान में वे बड़े पैमाने पर पौध तैयार कर अन्य किसानों को उपलब्ध करवा रहे हैं, जिससे स्थानीय स्तर पर रोजगार एवं आय के नए अवसर भी विकसित हुए हैं।

शंकरा कटहल के आकर्षक कोये

देशभर में बढ़ती लोकप्रियता

'सिद्दू' एवं 'शंकरा' कटहल किस्मों की लोकप्रियता तेजी से बढ़ी और आज इनकी खेती केवल कर्नाटक तक सीमित नहीं रही। वर्तमान में कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, बिहार तथा पूर्वोत्तर राज्यों के किसान भी इन किस्मों की खेती अपना रहे हैं।

वर्ष 2017 में इन पौधों का सीमित स्तर पर वितरण प्रारंभ किया गया था। किसानों से सकारात्मक प्रतिक्रिया मिलने के बाद इनकी मांग लगातार बढ़ती गई। वर्ष 2022 तक लगभग 29,892 'सिद्दू' पौधे बेचे जा चुके थे तथा इनकी मांग 50 हजार के करीब पहुँच गई थी। मार्च 2025 तक लगभग 1,92,770 पौधे किसानों को वितरित किए जा चुके हैं।

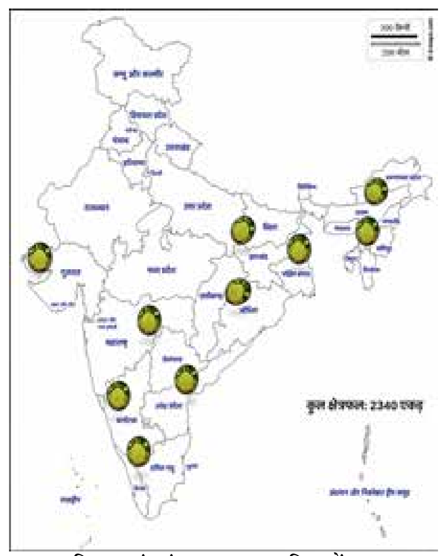

सिद्दू एवं शंकरा कटहल किस्मों का देशव्यापी विस्तार

वर्तमान में लगभग 31 हजार किसान इन किस्मों की खेती कर रहे हैं तथा करीब 2340 एकड़ क्षेत्र में इनका विस्तार हो चुका है। यह उपलब्धि दर्शाती है कि कटहल जैसी पारंपरिक फल फसल भी वैज्ञानिक सहयोग, गुणवत्तायुक्त पौध सामग्री और बाजार मांग के आधार पर आधुनिक व्यावसायिक खेती का मजबूत माध्यम बन सकती है।

किसानों की आय में अभूतपूर्व वृद्धि

भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान

लाल कटहल

सामान्यतः कटहल के गूदे का रंग हल्का पीला होता है, किंतु 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' किस्मों में तांबे जैसी आकर्षक लालिमा दिखाई देती है। यही विशेषता इन्हें सामान्य कटहल से अलग पहचान प्रदान करती है और उपभोक्ताओं एवं किसानों को तुरंत आकर्षित करती है। इन किस्मों के कोये मजबूत, स्वादिष्ट तथा लंबे समय तक ताजगी बनाए रखने वाले पाए गए हैं। वैज्ञानिक विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ कि इन किस्मों में कैरोटेनॉयड, लाइकोपीन तथा फिनॉलिक यौगिकों की मात्रा अधिक पाई जाती है। विशेष रूप से लाइकोपीन वही प्राकृतिक तत्व है, जो टमाटर एवं तरबूज को लाल रंग प्रदान करता है तथा अपने एंटीऑक्सीडेंट गुणों के कारण स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी माना जाता है। यही कारण है कि ये लाल कटहल किस्में पोषण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी विशेष महत्व रखती हैं। 'शंकरा' किस्म में प्रति फल कोयों की संख्या अधिक पाई गई, जिसके कारण इसका बाजार मूल्य भी अपेक्षाकृत अधिक रहा। आकर्षक लालिमा, बेहतर स्वाद एवं उच्च गुणवत्ता के कारण उपभोक्ताओं ने इस किस्म को विशेष रूप से पसंद किया। परिणामस्वरूप, कम समय में ही 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' कटहल की मांग कर्नाटक से बाहर अन्य राज्यों तक तेजी से फैलने लगी।

संस्थान के हस्तक्षेप से पहले कटहल किसानों की आय अत्यंत सीमित थी। ‘सिद्दू’ किस्म के संरक्षक किसान की वार्षिक आय लगभग 8 हजार रुपये थी, जबकि ‘शंकरा’ किस्म के किसान को केवल 5 हजार रुपये प्राप्त होते थे। किंतु इन किस्मों के प्रचार-प्रसार, वैज्ञानिक पहचान एवं पौध उत्पादन के बाद स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन आया।

‘सिद्दू’ किस्म के किसान ने पौध बिक्री से लगभग 1.15 करोड़ रुपये अर्जित किए, जबकि ‘शंकरा’ किसान को लगभग 8.25 लाख रुपये की आय प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त, लाभ-साझेदारी मॉडल के अंतर्गत भी किसानों को लाखों रुपये की अतिरिक्त आय हुई। यह उदाहरण दर्शाता है कि यदि स्थानीय जैव विविधता को वैज्ञानिक सहयोग, गुणवत्तायुक्त पौध सामग्री एवं प्रभावी बाजार उपलब्ध करावाया जाए, तो छोटे एवं सीमांत किसान भी आर्थिक रूप से सशक्त बन सकते हैं।

किसानों को मिला कानूनी अधिकार

‘सिद्दू’ एवं ‘शंकरा’ कटहल किस्मों की सफलता केवल खेती और आय वृद्धि तक सीमित नहीं रही, बल्कि इन किस्मों को कानूनी संरक्षण भी प्राप्त हुआ। वर्ष 2023 में इन दोनों किसान संरक्षित किस्मों को “पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण” के अंतर्गत पंजीकरण एवं संरक्षण प्रदान किया गया।

सिद्दू कटहल के आकर्षक लाल कोये

मूल्य संवर्धन

दोड्डाबल्लापुर ताल्लुक के प्रगतिशील किसान श्री के. एस. अशोक कुमार ने ‘सिद्दू’ एवं ‘शंकरा’ कटहल किस्मों की व्यावसायिक खेती को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने लगभग 10 एकड़ क्षेत्र में इन किस्मों की खेती प्रारंभ की। विशेष रूप से, ये किस्में वर्षा आधारित परिस्थितियों में भी सफल सिद्ध हुई। पाँच वर्ष पुराने बगीचे से उन्हें ‘सिद्दू’ किस्म से 10.5 टन तथा ‘शंकरा’ किस्म से 9.87 टन उत्पादन प्राप्त हुआ। दोनों किस्मों से उन्हें लगभग 7.9 लाख रुपये प्रति एकड़ का शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ। श्री अशोक कुमार ने कटहल आधारित कई मूल्य संवर्धित उत्पाद भी विकसित किए, जिनमें कटहल हलवा, कटहल बिरयानी, कटहल मंचूरियन, कटहल करी, कटहल पायसम एवं कटहल काठी रोल प्रमुख हैं। यह दर्शाता है कि कटहल केवल ताजे फल के रूप में ही नहीं, बल्कि प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन उद्योग के लिए भी अत्यंत उपयोगी एवं लाभकारी फसल बन सकता है। कटहल से तैयार मूल्य संवर्धित उत्पाद - आरटीएस पेय एवं मांस के विकल्प के रूप में उपयोग की जाने वाली कटहल करी प्रमुख हैं।

कटहल के मूल्यवर्धित उत्पाद

भारत विश्व का पहला देश है, जिसने किसानों एवं पौधा प्रजनकों दोनों के अधिकारों को समान महत्व देते हुए पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001 लागू किया। इस अधिनियम का उद्देश्य नई पौधा किस्मों का संरक्षण, किसानों के योगदान को मान्यता तथा कृषि जैव विविधता को सुरक्षित करना है।

लंबे समय तक किसान पारंपरिक किस्मों का संरक्षण करते रहे, किंतु उन्हें न तो औपचारिक पहचान मिलती थी और न ही आर्थिक लाभ। पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण ने इस स्थिति में महत्वपूर्ण बदलाव लाया है।

‘सिद्दू’ एवं ‘शंकरा’ किस्मों को संरक्षण मिलने से किसानों को अनेक लाभ प्राप्त हुए-

किसानों की पहचान एवं स्वामित्व अधिकार: इन किस्मों को “संरक्षित किसान किस्म” के रूप में राष्ट्रीय मान्यता मिली, जिससे वास्तविक संरक्षक किसानों की पहचान सुनिश्चित हुई।

लाभ-साझेदारी का अधिकार: इन किस्मों के व्यावसायिक उपयोग की स्थिति में किसानों को आर्थिक लाभ प्राप्त

करने का अधिकार मिला। इसी उद्देश्य से आईसीएआर-आईआईएचआर ने लाभ-साझेदारी मॉडल लागू किया, जिसके अंतर्गत पौध बिक्री से प्राप्त आय का 75 प्रतिशत हिस्सा किसानों को दिया गया।

जैव विविधता संरक्षण को बढ़ावा: इन किस्मों की सफलता ने अन्य किसानों को भी स्थानीय एवं पारंपरिक फल किस्मों के संरक्षण के लिए प्रेरित किया है।

राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान: इन किस्मों के संरक्षण में योगदान के लिए संबंधित किसानों को "आनुवंशिक विविधता के संरक्षक" के रूप में सम्मानित किया गया।

भविष्य के लिए संरक्षण: कानूनी सुरक्षा मिलने से इन किस्मों के अनधिकृत व्यावसायिक उपयोग पर नियंत्रण संभव हुआ है तथा इनके मूल गुणों को भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सकेगा।

आज 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' केवल सफल कटहल किस्में नहीं हैं, बल्कि वे इस बात का प्रतीक बन चुकी हैं कि किसान और वैज्ञानिक मिलकर स्थानीय जैव संसाधनों को राष्ट्रीय संपदा में परिवर्तित कर सकते हैं। यह सफलता भारतीय कृषि व्यवस्था में किसान नवाचार एवं जैव विविधता संरक्षण की बढ़ती स्वीकार्यता को भी दर्शाती है।

सिद्दू कटहल के परिपक्व फल

सारणी: 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' किस्मों से किसानों द्वारा अर्जित आय

वर्ष	किसानों द्वारा अर्जित आय (रु.)		संस्थान लाभ-साझेदारी मॉडल से प्राप्त आय (रु.)	
	सिद्दू	शंकरा	सिद्दू	शंकरा
2018-19	4,50,000	-	54,000	-
2019-20	9,00,000	-	3,50,000	-
2020-21	13,50,000	-	6,50,000	5,00,000
2021-22	22,50,000	-	-	-
2022-23	27,00,000	2,00,000	16,50,000	9,75,000
2023-24	20,00,000	2,00,000	12,16,095	2,32,203
2024-25	18,50,000	4,25,000	9,98,320	2,46,880
कुल	**1,15,00,000**	**8,25,000**	**49,18,415**	**19,54,083**

सारणी: 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' कटहल किस्मों की प्रमुख विशेषताएँ

विशेषता	सिद्दू	शंकरा
औसत फल वजन	2.44 कि.ग्रा.	2.78 कि.ग्रा.
प्रति फल कोयों की संख्या	25.30	50.60
कुल कैरोटेनॉयड	4.43 माइक्रोग्राम/100 ग्राम	5.83 माइक्रोग्राम/100 ग्राम
लाइकोपीन	1.12 माइक्रोग्राम/100 ग्राम	2.26 माइक्रोग्राम/100 ग्राम
कुल फिनॉल	31.76 माइक्रोग्राम/100 ग्राम	37.99 माइक्रोग्राम/100 ग्राम

आज 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' केवल कटहल की नई किस्में नहीं हैं, बल्कि वे भारत में कृषि जैव विविधता संरक्षण की एक प्रेरणादायक सफलता कहानी बन चुकी हैं। इस मॉडल ने यह सिद्ध किया है कि यदि वैज्ञानिक संस्थान, किसान और बाजार आपसी समन्वय के साथ कार्य करें, तो स्थानीय एवं पारंपरिक किस्में भी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान बना सकती हैं।

कटहल जैसी पारंपरिक फल फसलें जलवायु परिवर्तन के दौर में और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं, क्योंकि ये अपेक्षाकृत कम देखभाल में भी अच्छा उत्पादन देती हैं तथा सूखा सहनशील होती हैं। ऐसे में 'सिद्दू' एवं 'शंकरा' जैसी किस्में भविष्य की टिकाऊ एवं जलवायु-अनुकूल कृषि प्रणाली के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

यह सफलता कहानी स्पष्ट संदेश देती है कि भारत की ग्रामीण जैव विविधता केवल संरक्षण की धरोहर नहीं, बल्कि किसानों की समृद्धि, आत्मनिर्भरता एवं सतत कृषि विकास का मजबूत आधार भी बन सकती है।

अल्प दोहित सब्जियां एवं आनुवंशिक संसाधन विविधता

राजेश कुमार और **राकेश कुमार दुबे**

भारत, जैव विविधता की दृष्टि से विश्व के समृद्ध देशों में शामिल है। विविध जलवायु क्षेत्रों और पारंपरिक कृषि प्रणालियों के कारण यहाँ अनेक देसी एवं अल्पदोहित सब्जियाँ पाई जाती हैं। ये सब्जियाँ पोषण, औषधीय गुण, जलवायु अनुकूलता तथा किसानों की आय वृद्धि की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, लेकिन सीमित उपयोग, कम जागरूकता और बाजार की कमी के कारण अभी व्यापक स्तर पर लोकप्रिय नहीं हो सकी हैं। अल्पदोहित सब्जियों में कुपोषण दूर करने की अपार क्षमता है। इनमें से कई फसलें बदलती जलवायु के अनुकूल हैं तथा कमजोर भूमि में भी कम प्रबंधन के साथ सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। उपभोक्ताओं में बढ़ती जागरूकता के साथ इनकी मांग भी बढ़ रही है, इसलिए इनके उत्पादन को बढ़ावा देना आवश्यक है। इसके लिए किसानों, उपभोक्ताओं, शोधकर्ताओं और नीति निर्माताओं सहित सभी हितधारकों के समन्वित प्रयासों से अनुसंधान एवं विकास की स्पष्ट रणनीति तैयार करनी होगी, ताकि इनके आनुवंशिक जननद्रव्यों का संग्रह, संरक्षण और उन्नत किस्मों का विकास सुनिश्चित किया जा सके।

अल्पदोहित पौध प्रजातियाँ ऐसे पौधों का समूह हैं, जिनमें पोषण एवं आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने की अपार क्षमता होती है। विविध जलवायु परिस्थितियों के कारण भारत अनेक प्रकार की देसी एवं हरित खाद्य फसलों का प्राकृतिक भंडार है। स्वदेशी अल्पदोहित सब्जियों ने खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के साथ-साथ सीमांत एवं लघु किसानों की आजीविका सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये सब्जियाँ लौह, जस्ता, प्रो-विटामिन ए तथा विभिन्न फाइटोकेमिकल्स जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं।

भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी-221305

बाकला

इसे बाकला, अनछुही, कालेमटर, कड़हुरा लिखी एवं रवा आदि नामों से भी जाना जाता है। बाकला को इसकी मुलायम फलियों के लिए उगाया जाता है, जिसका सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। फलियों के अतिरिक्त इसके दानों को भी विभिन्न उपयोग में लाया जाता है। बाकला में अन्य दलहनी सब्जियों की अपेक्षाकृत अधिक प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट्स पाया जाता है। बाकला में बहुत अधिक मात्रा में एल डोपा (L-DOPA) जैसे बीटा (3,4-डाइहाइड्रॉक्सी फिनाइल, एल-एलनिन) स्वतंत्र रूप में तथा कुछ बीटा-ग्लाइकोसाइड के रूप में पाया जाता है। बाकला का शाकीय पौधा एकवर्षीय, सीधा, 60-90 सें.मी. ऊँचा होता है। इसकी प्रमुख किस्में- काशी संपदा, पूसा सुमित एवं स्वर्ण सुरक्षा हैं। इसकी हरी फलियों की औसत उपज 80-100 क्विंटल/है. होती है।

बाकला की किस्म-काशी संपदा

इनमें से कई फसलें आज भी सीमित क्षेत्रों और कुछ पारंपरिक समुदायों तक ही सीमित हैं। इन पौध प्रजातियों में प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के प्रति सहनशीलता, बेहतर अनुकूलन क्षमता तथा स्थायित्व पाया जाता है। हालांकि जागरूकता, लोकप्रियता और वैज्ञानिक तकनीकों के अभाव में इनका व्यापक उपयोग अभी तक नहीं हो सका है।

वर्तमान समय में देसी एवं अल्पदोहित सब्जियों के प्रति रुचि और मांग तेजी से बढ़ रही है, जो कृषि क्षेत्र में नई फसलों की पहचान एवं विकास की दिशा में सकारात्मक संकेत है।

उत्तर-पूर्वी भारतीय क्षेत्र जैव विविधता का प्रमुख केन्द्र माना जाता है और यह अपनी जातीय विविधता एवं पारंपरिक संस्कृति के लिए भी प्रसिद्ध है। यहाँ पाई जाने वाली अनेक अल्पदोहित सब्जियाँ जैविक एवं अजैविक तनावों के प्रति सहनशील होने के साथ सतत उत्पादन प्रणाली प्रदान करती हैं।

पोषण मूल्य के अलावा इनका औषधीय एवं आजीविका संवर्धन में भी विशेष महत्व है। इस क्षेत्र में अफ्रीकन बैंगन, कटेरी, ट्री टमाटर, करंट टमाटर, बर्ड पेपर, बोनेट पेपर, ट्री बीन, राइस बीन, जैक बीन, विंग्ड बीन तथा ब्रॉड बीन जैसी विविध फसलें पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त स्टफिंग ककड़ी, जंगली खीरा, टीसल गार्ड, चिचिंडा, कंटोला एवं चाउ-चाउ जैसी कम ज्ञात कुकुर्बिट फसलें तथा वाटर स्पिनच, बथुआ, चौलाई, पोई एवं लाई साग जैसी पत्तेदार सब्जियाँ भी स्थानीय स्तर पर उपयोग में लाई जाती हैं।

हालाँकि उत्तर-पूर्वी क्षेत्र सब्जियों की विविधता से समृद्ध है, फिर भी इन जैव संसाधनों के आर्थिक विकास हेतु अनुसंधान एवं विकास कार्य अभी सीमित हैं। इसलिए इनके संरक्षण, प्रबंधन एवं समुचित उपयोग के लिए स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर ठोस प्रयासों की आवश्यकता है, ताकि इन सब्जी फसलों की अपार क्षमता का लाभ भविष्य में व्यापक रूप से उठाया जा सके।

काशी बथुआ-2

सारणी: भारत में अल्पदोहित सब्जियों की विविधता

क्षेत्र एवं राज्य	प्रमुख अल्पदोहित सब्जियाँ	प्रमुख विशेषताएँ
पूर्वोत्तर भारत (असोम, मणिपुर, मेघालय, नगालैंड)	पंखिया सेम, चायोट, कलमी साग, याम बीन, फर्न	उच्च पोषण एवं पारंपरिक आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा
उत्तर भारत (उत्तर प्रदेश, बिहार)	कुंदरू, ककोड़ा, चौलाई, बथुआ, पोई	पोषक तत्वों से भरपूर एवं पारंपरिक उपयोग वाली फसलें
पश्चिम भारत (राजस्थान, गुजरात)	काचरी, कैर, सांगरी, ग्वार, मतीरा	सूखा सहनशील एवं कम पानी में उत्पादन योग्य
मध्य भारत (मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़)	कुलफा, कोलोकैसिया, जिमीकंद	औषधीय एवं पोषणीय महत्व वाली फसलें
दक्षिण भारत (तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक)	सहजन, अगाथी, बाकला, याम	कैल्शियम एवं विटामिन से भरपूर
पूर्वी भारत (ओडिशा, पश्चिम बंगाल)	कलमी साग, चौलाई, कोहड़ा पत्ती	आयरन एवं खनिज तत्वों की अधिकता
हिमालयी क्षेत्र (उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश)	लिंगुड़ा, फाफड़ा, जंगली पत्तेदार सब्जियाँ	प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट का स्रोत
नदी तटीय / दियारा क्षेत्र	ग्राफ्टेड टमाटर, ग्राफ्टेड बैंगन, कलमी साग, लंबा खरबूजा	कम लागत एवं अधिक उत्पादन क्षमता
तटीय क्षेत्र	कलमी साग, कोलोकैसिया, पोई	आर्द्र परिस्थितियों के लिए उपयुक्त

पोषण एवं औषधीय महत्व

अल्पदोहित सब्जियाँ सूक्ष्म पोषक तत्वों का उत्कृष्ट स्रोत हैं। इनमें आयरन, कैल्शियम, जिंक, विटामिन ए एवं सी, एंटीऑक्सीडेंट, प्रोटीन तथा आहार रेशा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इन सब्जियों का नियमित सेवन कुपोषण, एनीमिया तथा जीवनशैली जनित रोगों की रोकथाम में सहायक हो सकता है। साथ ही, इनके औषधीय गुण शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और समग्र स्वास्थ्य सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जैव विविधता संरक्षण में भूमिका: देसी एवं अल्पदोहित सब्जियाँ कृषि जैव विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनके संरक्षण से पारंपरिक ज्ञान सुरक्षित रहता है, जलवायु सहनशील जर्मप्लाज्म संरक्षित होता है तथा भविष्य के पौध सुधार कार्यक्रमों के लिए आनुवंशिक संसाधन उपलब्ध रहते हैं।

प्रमुख चुनौतियाँ: गुणवत्तायुक्त बीजों की कमी, वैज्ञानिक उत्पादन तकनीक का अभाव, सीमित बाजार एवं प्रसंस्करण सुविधाएँ, उपभोक्ता जागरूकता की कमी तथा अनुसंधान एवं नीति समर्थन का अभाव इनके विकास में प्रमुख बाधाएँ हैं।

संवर्धन एवं विकास की संभावनाएँ: पोषण सुरक्षा एवं टिकाऊ कृषि के लिए अल्पदोहित सब्जियों का महत्व बढ़ रहा है। इनके विकास हेतु जर्मप्लाज्म संरक्षण, उन्नत किस्मों का विकास, मूल्य संवर्धन, किसान प्रशिक्षण तथा जैविक एवं प्राकृतिक खेती में समावेशन जैसे प्रयास आवश्यक हैं।

कलमी साग

कलमी साग को कांग कॉग, स्वैम्प कैबेज के नाम से जाना जाता है। इसका उद्गम भारत में माना जाता है और यह मॉर्निंग ग्लोरी कुल का पौधा है। इसे कोमल तनों एवं पत्तियों के लिए उगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ खनिजों, विटामिनों तथा प्रोटीन का अच्छा स्रोत हैं।

इसके तने लंबे, गाँठदार एवं खोखले होते हैं, जिनके कारण यह जल पर तैर सकता है या कीचड़युक्त भूमि पर फैल सकता है। कलमी साग की विविध जर्मप्लाज्म संग्रहण भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी में संरक्षित हैं, जहाँ 30 से अधिक विभिन्न जीनोटाइप सुरक्षित रखे गए हैं। भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा काशी मनु नामक उन्नत किस्म को विकसित किया गया है, जो चौड़ी पत्तियों वाला, वर्षभर उगाया जाने वाला एवं बहुकटाई हेतु उपयुक्त है। इसकी बुआई एवं रोपण के लिए बीजों को सीधे खेत में बोया जाता है अथवा पौध तैयार कर रोपाई की जा सकती है। एक है. के लिए 20 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त है। बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली कटाई की जाती है। बहुकटाई प्रणाली में 100 टन प्रति है. से अधिक हरी पत्ती उपज प्राप्त हो जाती है।

कलमी साग की प्रजाति काशी मनु

पोई साग

इसे आमतौर पर भारतीय पालक/मालाबार पालक के नाम से जाना जाता है। इसकी खेती देश में विविध मौसम में की जाती है। देश में दो प्रकार के पोई की खेती की जाती है: हरा प्रकार (बेसेला अल्बा प्रजाति अल्बा) और लाल प्रकार (बसेला अल्बा प्रजाति रूबरा)। पोई साग आमतौर पर इसकी पत्तियों और युवा टहनियों के लिए उगाया जाता है, जो पकाने के बाद एक पौष्टिक सब्जी बन जाते है। मुलायम रसीली पत्तियों को सलाद के रूप में कच्चा खाया जा सकता है। पोई साग विटामिन और खनिजों का एक अच्छा स्रोत है। इसकी 100 ग्राम ताजा पत्तियों में कैल्शियम (109 मिलीग्राम), आयरन (10 मिलीग्राम), विटामिन ए (8000 आईयू), विटामिन सी (102 मिलीग्राम) और फोलिक एसिड (140 माइक्रोग्राम) होता है। भाकृअनुप-आईआईवीआर, वाराणसी में 100 से अधिक विविध जननद्रव्यों का रखरखाव एवं शोध किया जा रहा है और हाल ही में पोई साग की तीन किस्में काशी पोई-1, काशी पोई-2 और काशी पोई-3 को विकसित और अधिसूचित किया गया है।

काशी पोई-1

काशी पोई-2: बौनी किस्म

पुष्प

बथुआ

यह एक तेजी से बढ़ने वाली, वार्षिक अल्पदोहित पत्तेदार सब्जी है, यह व्यापक जलवायु, मृदा के प्रकार और उर्वरता स्तर के प्रति सहनशील है तथा सीमांत भूमि में इसकी खेती की क्षमता है। पत्ती एवं कोमल पौधे के हिस्सों का उपयोग पत्तेदार सब्जी के रूप में किया जाता है।

रसीली मुलायम पत्तियां फाइबर, प्रोटीन, खनिज, विटामिन, एंटीऑक्सीडेंट और ओमेगा-6-फैटी एसिड का बहुत अच्छा स्रोत हैं। भाकृअनुप-आईआईवीआर, वाराणसी और आईसीएआर-आईएआरआई, पूसा, नई दिल्ली द्वारा विकसित एवं अधिसूचित किया गया है, जिनमे काशी बथुआ-2 (हरी पत्तियां), काशी बथुआ-4 (बैंगनी-हरा), पूसा बथुआ-1 और पूसा हरा जैसी प्रमुख प्रजातियाँ हैं।

काशी बथुआ-4

सारणी 2: कलमी साग, पालक एवं स्पिनाच के पोषण मूल्य की तुलना (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग)

अवयव	कलमी साग	पालक	स्पिनाच
ऊर्जा	19.0 किलो कैलोरी	46.0 किलो कैलोरी	23.0 किलो कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	3.14 ग्राम	6.50 ग्राम	3.0 ग्राम
फाइबर आहार	2.1ग्राम	0.7 ग्राम	2.0 ग्राम
वसा	0.2 ग्राम	0.8 ग्राम	0.39 ग्राम
प्रोटीन	2.6 ग्राम	3.4 ग्राम	2.0 ग्राम
विटामिन ए	1890.0 मैक्रोग्राम	1758.6 मैक्रोग्राम	469. मैक्रोग्राम
थियामिन (बी1)	0.03 मिलीग्राम	0.26 मिलीग्राम	0.078 मिलीग्राम
राइबोफ्लेविन (बी2)	0.1 मिलीग्राम	0.56 मिलीग्राम	0.189 मिलीग्राम
नियासिन (बी 3)	0.9 मिलीग्राम	3.3 मिलीग्राम	0.724 मिलीग्राम
विटामिन सी	55.0 मिलीग्राम	70.0 मिलीग्राम	28.1 मिलीग्राम
कैल्शियम	77.0 मिलीग्राम	380.0 मिलीग्राम	99.0 मिलीग्राम
आयरन	1.67 मिलीग्राम	1.62 मिलीग्राम	1.71 मिलीग्राम
फॉस्फोरस	39.0 मिलीग्राम	30.0 मिलीग्राम	49.0 मिलीग्राम

स्नो पी

सामान्य सब्जी मटर से भिन्न स्नो पी की सम्पूर्ण फलियाँ खाने हेतु उपयोग में लाई जाती हैं। स्नो पी की फलियाँ बढ़वार की प्रारम्भिक अवस्था में फूलकर चपटी हो जाती हैं और उसमें पर्चमेंट लेयर नहीं बनती तथा दाने अविकसित रह जाते हैं। यह खाने में बहुत स्वादिष्ट होती है। ऊर्जा मूल्य कम होने एवं विटामिन सी, आयरन, खाद्य रेशा तथा पोटेशियम की अधिक मात्रा होने के कारण इसका पोषण महत्व है। स्नोपी में पहली तुड़ाई पुष्पन के 10 दिनों बाद की जाती है। पहली तुड़ाई बुआई के 8-12 सप्ताह बाद की जाती है और अगले 8-10 सप्ताह तक जारी रहती है।

भाकृअनुप-आईआईवीआर, वाराणसी में स्नोपी आनुवांशिक उन्नयन की दिशा में कार्य चल रहा है जिसके अन्तर्गत काशी तृप्ति किस्म विकसित की गयी है। इस किस्म में विटामिन सी की काफी अधिक मात्रा है। इसके अलावा, मीठी फली, स्वर्ण तृप्ति, अर्का सम्पूर्णा एवं अर्का अपूर्वा इसकी उच्च प्रजातियाँ हैं।

सब्जी मटर की किस्म काशी तृप्ति

सरसों साग

सरसों के साग को 'चाइनीज सरसों' के नाम से भी जाना जाता है। सरसों का साग बरसात के मौसम के बाद उगाया जाता है। इसकी पत्तियों की कटाई नवंबर से शुरू होती है और जनवरी-फरवरी के अंत तक जारी रहती है। पत्तियों में 71.7-110.9 मिलीग्राम/100 ग्राम एस्कॉर्बिक एसिड और प्रचुर मात्रा में कैरोटीनॉयड और एंथोसायनिन यौगिक होते हैं। भाकृअनुप-आईआईवीआर, वाराणसी पर 200 से अधिक विविध जीनोटाइप के सुधार और उत्पादन तकनीक पर गहन शोध कार्य किया जा रहा है। पूसा साग-1 किस्म को आईएआरआई क्षेत्रीय स्टेशन, कटराइन द्वारा विकसित किया गया है। उत्तराखंड बागवानी और वानिकी विश्वविद्यालय, रानीचौरी ने यूएचफवीआर 12-1 की किस्में जारी की है, पत्तियां बैंगनी, चौड़ी, चपटी, रसीली, कुरकुरी, गैर-कड़वी, गैर-तीखी और यूएचफवीआर 12-2: पत्तियां हरी, चौड़ी, चपटी, रसीली, कुरकुरी, बिना कड़वी और बिना तीखी होती हैं। हरी पत्तीदार साग की उपज 519.2-629.5 क्विंटल/है. के बीच होती है।

सरसों साग में विविधता

कमल

कमल को पद्म, सेक्रेड लोटस आदि नामों से जाना जाता है। इसकी कोमल पत्तियाँ, डंठल एवं फूल सब्जी के रूप में उपयोग किए जाते हैं। कमल ककड़ी (राइजोम) खाद्य भाग है जिसे उबालकर, तलकर अथवा सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है।

कमल ककड़ी में प्रोटीन, स्टार्च, कैल्शियम, विटामिन बी एवं विटामिन सी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें एंटीऑक्सीडेंट गुण भी पाए जाते हैं तथा यह रक्त में कोलेस्ट्रॉल कम करने में सहायक है। यह सामान्यत: 150-200 प्रति किलोग्राम की दर से बिकती है। कमल का प्रवर्धन

कमल का प्रवर्धित फूलदार पौधा

किवाच

इसे किवाच, अलकुशी, कवच आदि नामों से जाना जाता है। यह एक दलहनी सब्जी है जिसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, रेशा, खनिज तत्व एवं विभिन्न विटामिन्स पाई जाते हैं। इसकी मुलायम फलियों को सब्जी एवं भुर्ता बनाने में प्रयोग किया जाता है। इसकी फलियाँ, बीजों एवं जड़ का बहुत अधिक औषधीय महत्व है। बीज में एल - डोपा पाया जाता है जो पार्किन्सन रोग एवं तनाव में काफी कारगर है। भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा किवाच की किस्म काशी प्रतिभा विकसित की गई हैं। एक है. बुआई के लिए 50-60 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। बीज को पंक्तियों में 60 × 60 सें.मी. के अन्तराल पर लगाकर मिट्टी चढ़ा दी जाती है। बुआई के लगभग 45 दिनों बाद पुष्पण प्रारम्भ होता है। इसकी उपज 250-300 क्विंटल/है. होती है।

किवाच किस्म काशी प्रतिभा

किवाच जनन्द्रव्य वी आर वे बी - 2

सारणी: सेम की फलियों एवं बीजों में विविधता

गुण	सीमा
फली की लंबाई	4.45-16.0 सें.मी.
फली का व्यास	1.24-3.73 सें.मी.
फली का वजन	3.0-13.4 ग्राम
बीज रंग	सफेद, पीला, भूरा, काला आदि
बीज लंबाई	0.75-1.35 सें.मी.
बीज वजन	18.5-38.3 ग्राम

सारणी: सेम की विकसित किस्में

प्रकार	किस्में	ऊपज
पोल	काशी हरितिमा	380 क्विंटल/है.
	काशी खुशहाल	357 क्विंटल/है.
	काशी शीतल	359 क्विंटल/है.
बुश	वीआरबी सेम-3	360 क्विंटल/है.
	वीआरबी सेम-9	350 क्विंटल/है.
	वीआरबी सेम-14	215 क्विंटल/है.
	वीआरबी सेम-18	245 क्विंटल/है.

बीजों अथवा राइजोम द्वारा किया जाता है। भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा पत्ती-तना कटिंग के माध्यम से सफल प्रवर्धन तकनीक विकसित की गई है, जिसमें 90% से अधिक जीवितता पाई गई। संस्थान द्वारा देश की प्रथम उच्च गुणवत्ता वाली प्रजाति काशी वैभव विकसित किया है।

सब्जी सोयाबीन

सब्जी सोयाबीन को विभिन्न नामों जैसे भाट, भाटवर, भेटामस, रामकुथी, आदि नामों से जाना जाता है। परम्परागत सोयाबीन के विभिन्न उत्पादों की तुलना में इसकी हरी सब्जी काफी स्वादिष्ट होती है। सोयाबीन के हरे रंग के बीजपत्र वाली किस्मों को प्रमुखत: सब्जी के लिए पसंद किया जाता है। ताजा फलियों को उबालकर प्रयोग करने से उसके अन्य प्रयोग की तुलना में शुद्ध प्रोटीन उपयोग अधिक होता है। इसके अंकुरित बीज को भी सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। सब्जी सोयाबीन की फसल अवधि 100-120 दिनों की होती है। बीज का रंग हरा तथा स्वाद मीठा होता है। इसकी हरी फलियों की उपज 50 क्विंटल/है. होती है। सब्जी सोयाबीन के आनुवंशिक उन्नयन का कार्य भाकृअनुप-भासअनुसं, वाराणसी द्वारा किया जा रहा है, जिससे आने वाले दिनों में सब्जी सोयाबीन की नई किस्में विकसित हो सकेंगी।

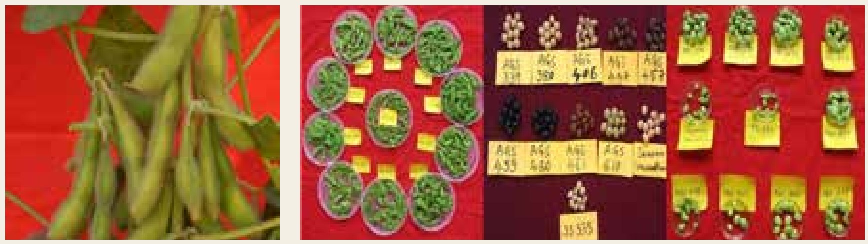

सब्जी सोयाबीन फली में विविधता

पंखिया सेम

इसे सामान्यत: मनीला बीन, गोवा बीन, प्रिन्सेस पी, एस्पैरगस पी एवं फोर एंगिल्ड बीन के नाम से भी जाना जाता है। यह एक बहुत उपयोगी बीन है जिसकी फली, बीज, कंदिल जड़ें, फूल एवं पत्तियाँ खाने हेतु उपयोग में आती हैं। इसकी फलियों में प्रोटीन की मात्रा लगभग 2.4 ग्राम प्रति 100 ग्राम होती है। इसकी फलियाँ खनिज एवं विटामिन की अच्छी स्रोत होती हैं। इसके सूखे बीज में 30-42 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है और इसके प्रोटीन में सभी लाभप्रद अमीनो अम्ल पाये जाते हैं। बीज में 15-20 प्रतिशत खाने योग्य तेल पाया जाता है। इसके तेल में बहुत अधिक मात्रा में टोकोफेरॉल होता है जो एण्टीऑक्सीडेन्ट गुण से भरपूर होता है । इसके कन्द में कार्बोहाइड्रेट की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है जिससे पर्याप्त ऊर्जा मिलती है। इसकी पत्तियों के प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में 20,000 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई विटामिन ए होती है।

यह एक शाकीय, बहुवर्षीय, लतायुक्त, 3-4 मीटर लम्बा पौधा है। इसकी फलियाँ 4 किनारों वाली होती हैं एवं किनारे पर पंख होते हैं। फलियाँ 6-10 सें.मी. लम्बी, हरे या गुलाबी रंग की होती हैं तथा प्रत्येक फली में 5-20 बीज पाए जाते है। इसकी प्रमुख किस्में-काशी अन्नपूर्णा एवं काशी रुद्राक्ष उगाने हेतु संस्तुत की गयी है। सामान्य रूप से बुआई के 50-90 दिनों में फूल आने लगते हैं तथा इसके 15 दिनों बाद फलियाँ तुड़ाई के लिए तैयार हो जाती हैं। इसकी हरी फलियों की उपज 250-300 क्विंटल/है. है।

पंखिया सेम किस्म काशी रुद्राक्ष

सिंघाड़ा

इसे पानीफल के नाम से भी जाना जाता है। सिंघाड़े में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, विटामिन बी, सी, आयरन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस जैसे मिनरल्स तथा राइबोफ्लेविन जैसे तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। सिंघाड़े का उपयोग सब्जी, फल एवं सूप के रूप में किया जाता है। 100 ग्राम कच्चे फलों में लगभग 70 प्रतिशत पानी, 23 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 4.70 प्रतिशत प्रोटीन, 0.30 प्रतिशत वसा, 0.60 प्रतिशत रेशा तथा 1.4 प्रतिशत खनिज तत्व पाए जाते हैं। इन फलों में पोषक तत्वों के अतिरिक्त औषधीय गुण भी विद्यमान हैं। आयोडीन एवं मैंग्नीज उपस्थित होने के कारण यह घेंघा रोग से बचाव में भी सहायक है। भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा नई किस्म काशी सिंघारड़ा-1 को विकसित किया गया है और अनेक जनन्द्रव्य का संकलन, मूल्यांकन एवं संचयन का कार्य किया जा रहा है।

सिंघाड़ा के फलों में विविधता

सेम

सेम को हायसिंथ बीन, सेम, फील्ड बीन आदि नामों से जाना जाता है । इसके दो प्रमुख प्रकार पाए जाते हैं- कोमल फलियों वाली उद्यान प्रकार की सेम एवं दाल एवं फील्ड बीन के रूप में उपयोग होने वाली सेम में प्रोटीन की मात्रा अधिक (20.9-29.2 %) पाई जाती है तथा इसकी फलियों में विशिष्ट सुगंध होती है, जो कुछ विशेष फैटी अम्लों के कारण होती है। यह एक उष्णकटिबंधीय, दोबीजपत्री एवं ताप-संवेदनशील पौधा है। ■

सामुदायिक बीज बैंक द्वारा जैव विविधता का सशक्तिकरण

निखिल ठाकुर[1], **जसदीप कौर**[2], **दीपा शर्मा**[1] और **विनीत शर्मा**[1]

भारत की कृषि प्रणाली सदियों से जैव विविधता पर आधारित रही है, जहाँ किसानों ने स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार फसलों की पारंपरिक किस्मों का संरक्षण किया है। किंतु आधुनिक कृषि पद्धतियों, संकर बीजों पर बढ़ती निर्भरता, जलवायु परिवर्तन तथा एकरूपी खेती के कारण कृषि जैव विविधता लगातार घट रही है। ऐसे समय में सामुदायिक बीज बैंक जैव विविधता संरक्षण और टिकाऊ कृषि के प्रभावी माध्यम के रूप में उभर रहे हैं। सामुदायिक बीज बैंक स्थानीय स्तर पर देसी एवं पारंपरिक बीजों के संरक्षण, पुनरुत्पादन और किसानों के बीच आदान-प्रदान की व्यवस्था प्रदान करते हैं। ये बीज बैंक किसानों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बीज उपलब्ध करवाकर आत्मनिर्भरता, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा तथा जलवायु अनुकूल खेती को बढ़ावा देते हैं। साथ ही, यह पहल किसानों के पारंपरिक ज्ञान और कृषि संस्कृति को भी संरक्षित करती है। प्रस्तुत लेख में सामुदायिक बीज बैंकों की अवधारणा, उनकी कार्यप्रणाली, जैव विविधता संरक्षण में भूमिका, सामाजिक-आर्थिक लाभ, चुनौतियों तथा भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है।

भारत की पारंपरिक कृषि प्रणाली जैव विविधता, आत्मनिर्भरता और प्रकृति के साथ सामंजस्य पर आधारित रही है। प्रत्येक क्षेत्र में किसान अपनी आवश्यकता, स्वाद और स्थानीय जलवायु के अनुसार बीजों का चयन और संरक्षण करते थे। किंतु आधुनिक कृषि पद्धतियों, संकर बीजों पर बढ़ती निर्भरता और एकरूपी खेती के कारण अनेक देसी किस्में धीरे-धीरे विलुप्त होती गई। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण ने पारंपरिक बीजों के संरक्षण की आवश्यकता को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। ऐसे में सामुदायिक बीज बैंक किसानों की कृषि विरासत और जैव विविधता को सुरक्षित रखने का प्रभावी माध्यम बनकर उभरे हैं।

सामुदायिक बीज बैंक किसानों द्वारा संचालित ऐसी सामूहिक व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य देसी एवं पारंपरिक बीजों का संरक्षण, पुनरुत्पादन और आदान-प्रदान करना है। यह व्यवस्था किसानों को बीजों के प्रति आत्मनिर्भर बनाती है तथा "बीज पर किसान का अधिकार" सुनिश्चित करती है। सामुदायिक बीज बैंक केवल बीज भंडारण केंद्र नहीं, बल्कि स्थानीय ज्ञान और कृषि परंपराओं के संरक्षण के केंद्र भी होते हैं।

महिलाओं और युवाओं का अहम योगदान

महिलाएँ पारंपरिक रूप से बीज संरक्षण की मुख्य संरक्षक रही हैं। सामुदायिक बीज बैंकों में उनकी भागीदारी बीज चयन, भंडारण और पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वहीं, युवा वर्ग डिजिटल रिकॉर्डिंग, नई तकनीकों और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से इन पहलों को आधुनिक स्वरूप प्रदान करता है। इससे ग्रामीण युवाओं में कृषि और जैव विविधता संरक्षण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है।

[1]डॉ यशवन्त सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश, [2]चौधरी सरवण कुमार हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश

चुनौतियों का समाधान

सामुदायिक बीज बैंकों को जागरूकता की कमी, वैज्ञानिक भंडारण सुविधाओं के अभाव तथा सीमित वित्तीय संसाधनों जैसी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कई बार किसानों को पारंपरिक बीजों के महत्व और संरक्षण तकनीकों की पर्याप्त जानकारी नहीं होती। ऐसी परिस्थितियों में प्रशिक्षण कार्यक्रम, वैज्ञानिक भंडारण तकनीकों का उपयोग, संस्थागत सहयोग और प्रभावी नीति समर्थन इन पहलों को मजबूत बना सकते हैं। कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विश्वविद्यालय एवं अनुसंधान संस्थान किसानों को तकनीकी मार्गदर्शन और प्रशिक्षण प्रदान कर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

बीजों का संरक्षण

कृषि जैव विविधता का संरक्षण: सामुदायिक बीज बैंक विभिन्न फसलों की पारंपरिक किस्मों को संरक्षित कर कृषि जैव विविधता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह विविधता खेती को अधिक लचीला बनाती है तथा कीट-रोग और प्रतिकूल मौसम के प्रभाव को कम करने में सहायता करती है। साथ ही, स्थानीय किस्में कम रासायनिक आदान में भी बेहतर प्रदर्शन करती हैं, जिससे पर्यावरणीय संतुलन और मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद मिलती है।

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में महत्व: अनियमित वर्षा, बढ़ते तापमान और मौसम की अनिश्चितता के दौर में सामुदायिक बीज बैंक किसानों के लिए सुरक्षा कवच का कार्य करते हैं। कई पारंपरिक किस्में कम पानी में भी उत्पादन देने में सक्षम होती हैं तथा विपरीत परिस्थितियों को सहन कर लेती हैं। इस प्रकार, ये बीज बैंक जलवायु अनुकूल खेती को बढ़ावा देने में सहायक हैं।

गाँव स्तर पर स्थापना एवं संचालन: सामुदायिक बीज बैंक की स्थापना किसानों की सक्रिय भागीदारी से की जाती है। इसमें बीज संग्रह, वर्गीकरण, वैज्ञानिक भंडारण तथा बीज वितरण की पारदर्शी व्यवस्था अपनाई जाती है। समय-समय पर प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रम आयोजित कर किसानों को बीज संरक्षण की तकनीकों से अवगत करवाया जाता है।

बीज आदान-प्रदान और सामाजिक एकजुटता: बीजों का आदान-प्रदान सामुदायिक बीज बैंक की प्रमुख विशेषता है। यह व्यवस्था किसानों के बीच सहयोग, विश्वास और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को मजबूत करती है। इससे ग्रामीण समाज में सामाजिक एकजुटता बढ़ती है तथा जैव विविधता संरक्षण को सामूहिक अभियान का स्वरूप मिलता है।

आजीविका, पोषण और स्वास्थ्य सुरक्षा: सामुदायिक बीज बैंक किसानों की आजीविका को मजबूत करने के साथ-साथ पोषण सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। पारंपरिक फसलें एवं सब्जियाँ सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं, जिससे ग्रामीण परिवारों के आहार में विविधता बढ़ती है और कुपोषण की समस्या कम करने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त, रासायनिक आदानों पर निर्भरता घटने से पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सामुदायिक बीज बैंक केवल जैव विविधता संरक्षण की पहल नहीं हैं, बल्कि ये टिकाऊ कृषि, ग्रामीण आजीविका और खाद्य सुरक्षा का मजबूत आधार भी हैं। उचित प्रोत्साहन और नीति समर्थन मिलने पर ये भारत की कृषि प्रणाली को अधिक आत्मनिर्भर, पर्यावरण अनुकूल और जलवायु सहिष्णु बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। वास्तव में, सामुदायिक बीज बैंक गाँवों को जैव विविधता के संरक्षक तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए आशा के केंद्र के रूप में स्थापित करते हैं।

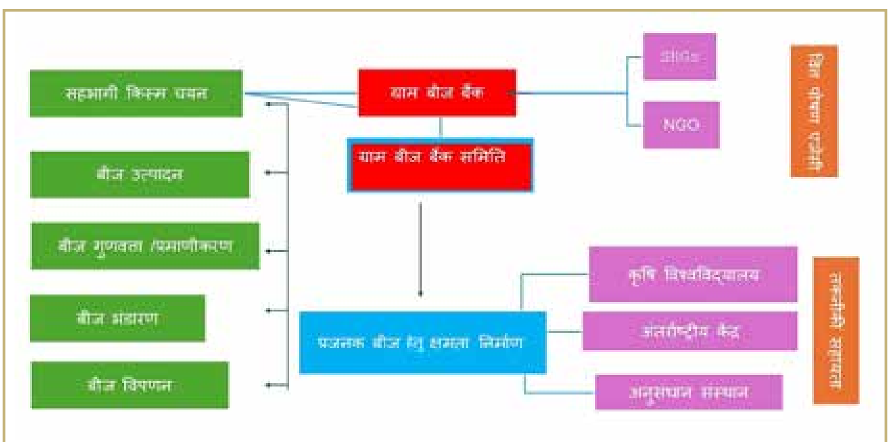

ग्राम बीज बैंक संगठन कार्य प्रणाली

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदले हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख पोर्टल epatrika.icar.org.in में भेजने के साथ ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें।

संपादक

पारिस्थितिकी

नवग्रह वाटिका- संस्कृति और पर्यावरण का समन्वित उद्यान

नीलम ठाकुर और **शबनम**

नवग्रह वाटिका एक विषयाधारित उद्यान मॉडल है, जो सांस्कृतिक प्रतीकवाद एवं पारिस्थितिकीय कार्यक्षमता का अनूठा समन्वय प्रस्तुत करता है। इसकी अवधारणा नौ खगोलीय पिंडों (नवग्रहों) को विशिष्ट पौधों से जोड़ने की पारंपरिक मान्यता पर आधारित है। परिदृश्य निर्माण में इन पौधों को प्रायः गोलाकार अथवा मंडलाकार स्वरूप में योजनाबद्ध ढंग से लगाया जाता है, जो ब्रह्मांडीय सामंजस्य के साथ-साथ पारिस्थितिक संतुलन का भी प्रतीक माना जाता है। नवग्रह वाटिका में मुख्यतः देसी एवं बहुउद्देशीय पौधों को स्थान दिया जाता है। ये पौधे परागणकर्ताओं के संरक्षण, मृदा उर्वरता सुधार, कार्बन संचयन तथा विभिन्न जीवों के लिए आवास निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार, नवग्रह वाटिका केवल आस्था एवं परंपरा का प्रतीक नहीं, बल्कि जैव विविधता संरक्षण एवं पर्यावरणीय संतुलन को बढ़ावा देने वाला एक वैज्ञानिक एवं पारिस्थितिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण मॉडल भी है।

हरित अवसंरचना

नवग्रह वाटिका जैव विविधता संरक्षण, पारंपरिक ज्ञान एवं आधुनिक भूदृश्य स्वरूप का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। देसी, जलवायु-सहिष्णु एवं पारिस्थितिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण पौधों को एक विषयाधारित संरचना में सम्मिलित कर यह मॉडल परागणकर्ताओं को संरक्षण प्रदान करता है, पर्यावास विविधता को बढ़ाता है, मृदा स्थिरता में सुधार करता है तथा शहरी हरित आवरण को सुदृढ़ बनाता है। अपने पारिस्थितिक महत्व के साथ-साथ नवग्रह वाटिका पारंपरिक सांस्कृतिक ज्ञान एवं आधुनिक सतत विकास अवधारणाओं के बीच सेतु का कार्य करती है। एक बहुआयामी हरित अवसंरचना मॉडल के रूप में इसे शैक्षणिक संस्थानों, सार्वजनिक उद्यानों, मंदिर परिसरों एवं सामुदायिक स्थलों पर प्रभावी रूप से विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार, नवग्रह वाटिका जैव विविधता संरक्षण, पर्यावरण जागरूकता एवं सांस्कृतिक विरासत के संवर्धन की दिशा में एक महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक पहल है।

नवग्रह वाटिका एक विषयाधारित उद्यान है, जो पारंपरिक भारतीय खगोलीय ज्ञान पर आधारित है। इसमें नवग्रहों (नौ ग्रहों) से संबंधित नौ पवित्र एवं पारिस्थितिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण पादप प्रजातियों का सुनियोजित ढंग से रोपण किया जाता है। मान्यता है कि नवग्रहों से संबंधित वृक्षों का रोपण एवं नियमित संरक्षण संबंधित ग्रहों की सकारात्मक ऊर्जा को सुदृढ़ करता है, जिससे जीवन में संतुलन, सुख एवं शुभ फल की प्राप्ति होती है। इन पवित्र वृक्षों की सेवा एवं संरक्षण से मानसिक स्थिरता, आंतरिक शांति तथा आध्यात्मिक चेतना का विकास भी माना जाता है।

सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक महत्व के साथ-साथ नवग्रह वाटिका जैव विविधता संरक्षण एवं देसी पौधों के संवर्धन का प्रभावी माध्यम भी है। नवग्रहों से जुड़े अधिकांश पौधे स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल, मौसम सहनशील एवं बहुउपयोगी होते हैं। ये मधुमक्खियों एवं तितलियों जैसे परागणकर्ताओं को संरक्षण प्रदान करवाते हैं, पक्षियों को आहार एवं आश्रय उपलब्ध कराते हैं तथा मृदा संरक्षण एवं सूक्ष्म जलवायु संतुलन बनाए रखने में सहायता करते हैं।

विशेष रूप से शहरी एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में नवग्रह वाटिका हरित आवरण बढ़ाने

नवग्रह वाटिका में ग्रहों से संबंधित पौधों का विवरण

औद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, थुनाग, गुड़ाहरी, गोहर, डॉ. वाई. एस. परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश - 175028

के साथ पर्यावरण जागरूकता का जीवंत शैक्षिक मॉडल भी बनती है। यह पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान को आधुनिक सतत विकास लक्ष्यों के साथ जोड़ते हुए जैव विविधता संरक्षण का एक व्यावहारिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरण अनुकूल दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

उपयुक्त स्थान

नवग्रह वाटिका की स्थापना मंदिर परिसरों, हर्बल उद्यानों, आयुर्वेद महाविद्यालयों, विश्वविद्यालय परिसरों, जैव विविधता पार्कों तथा विद्यालयों के इको-क्लबों में प्रभावी रूप से की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त, पंचायत स्तर पर विकसित पवित्र उपवन भी नवग्रह वाटिका स्थापना के लिए उपयुक्त स्थान हो सकते हैं। ऐसे स्थलों पर स्थापित नवग्रह वाटिकाएँ न केवल हरित आवरण एवं जैव विविधता संरक्षण को बढ़ावा देती हैं, बल्कि पर्यावरण जागरूकता, पारंपरिक ज्ञान संरक्षण एवं सामुदायिक सहभागिता को भी सुदृढ़ करती हैं।

परिदृश्य निर्माण मॉडल

नवग्रह वाटिका का सबसे आकर्षक एवं लोकप्रिय स्वरूप वृत्ताकार "मंडल" शैली पर आधारित होता है, जिसके केंद्र में एक खुला स्थान रखा जाता है। इस संरचना में नौ ग्रहों से संबंधित पौधों को त्रिज्यीय खंडों में इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि वे ग्रहों की पारंपरिक स्थिति, ब्रह्मांडीय संतुलन एवं आध्यात्मिक सामंजस्य का प्रतीक बनें।

यह विन्यास न केवल सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सौंदर्य को अभिव्यक्त करता है, बल्कि पारिस्थितिक संतुलन को भी सुदृढ़ करता है।

सारणी: नवग्रह वाटिका से संबंधित पौध प्रजातियों का पर्यावरणीय महत्व

ग्रह	साधारण नाम	वैज्ञानिक नाम	पर्यावरणीय महत्व
सूर्य	मदार	कैलोट्रोपिस गिगेंटिया	सूखा सहिष्णु, परागणकर्ताओं को सहारा प्रदान करता है
चंद्रमा	पलाश	ब्यूटिया मोनोस्पर्मा	परागणकर्ताओं के लिए उपयोगी, मृदा उर्वरता में सहायक
मंगल	खैर	सेनेगलिया कैटेचू	नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं मृदा संरक्षण में सहायक
बुध	अपामार्ग	अचिरांथेस एस्पेरा	औषधीय महत्व की जड़ी-बूटी, भूमि आवरण प्रदान करती है
बृहस्पति	पीपल	फाइकस रेलिजिओसा	प्रमुख प्रजाति, पक्षियों एवं अन्य जीवों का आवास
शुक्र	गुलर	फाइकस रेसमोसा	फलभक्षी जीवों के लिए महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत
शनि	शमी	प्रोसोपिस सिनेरारिया	शुष्क क्षेत्रों में अनुकूल, मृदा संवर्धन में सहायक
राहु	दूर्वा घास	सिनोडोन डैक्टिलॉन	मृदा को बाँधने एवं कटाव नियंत्रण में उपयोगी
केतु	कुशा घास	डेस्मोस्टैक्या बिपिन्नाटा	मृदा स्थिरीकरण एवं पारिस्थितिक पुनर्स्थापन में सहायक

नवग्रह वाटिका के निर्माण में सॉफ्टस्केप एवं हार्डस्केप तत्वों का संतुलित और योजनाबद्ध समावेश आवश्यक है, ताकि यह केवल धार्मिक प्रतीकात्मक स्थल न रहकर एक समग्र एवं अनुभवात्मक उद्यान के रूप में विकसित हो सके। सॉफ्टस्केप के अंतर्गत प्रत्येक ग्रह से संबंधित पवित्र वृक्ष इसकी मूल संरचना तैयार करते हैं।

इनके साथ पुष्पीय पौधे, सुगंधित झाड़ियाँ, औषधीय प्रजातियाँ तथा छायादार वृक्ष लगाए जा सकते हैं, जो उद्यान की पारिस्थितिकीय एवं सौंदर्यात्मक उपयोगिता को बढ़ाते हैं। मधुमालती जैसी पुष्पीय बेलों का प्रयोग परगोला अथवा वृक्षों के सहारे कर उद्यान को ऊर्ध्वाधर विस्तार एवं आकर्षक दृश्य प्रभाव प्रदान किया जा सकता है। वहीं, ग्राउंडकवर पौधों एवं देसी घासों का उपयोग मृदा संरक्षण, नमी बनाए रखने तथा जैव विविधता संवर्धन में सहायक होता है।

हार्डस्केप तत्वों में वृत्ताकार अथवा रेडियल पथ, प्राकृतिक पत्थरों से निर्मित वॉकवे, बैठने हेतु बेंच, ध्यान के लिए चबूतरे, ग्रह-प्रतीक शिलालेख, सजावटी मूर्तियाँ, फाउंटेन तथा बर्ड बाथ जैसी संरचनाएँ सम्मिलित की जा सकती हैं।

ये तत्व उद्यान की सौंदर्यात्मक आकर्षण क्षमता बढ़ाने के साथ आगंतुकों को विश्राम, अवलोकन एवं अध्यात्मिक चिंतन का अवसर भी प्रदान करते हैं। यदि संतुलन, एकता, अनुपात, लय एवं फोकल पॉइंट जैसे लैंडस्केपिंग सिद्धांतों का वैज्ञानिक ढंग से उपयोग किया जाए, तो नवग्रह वाटिका एक सामंजस्यपूर्ण, आकर्षक एवं जीवंत हरित स्थल के रूप में विकसित हो सकती है।

इस प्रकार, नवग्रह वाटिका अध्यात्मिक आस्था, पारिस्थितिक संरक्षण एवं मनोरंजनात्मक उपयोग का एक उत्कृष्ट समन्वित मॉडल प्रस्तुत करती है।

जैव विविधता संरक्षण में भूमिका

देसी प्रजातियों का संवर्धन: नवग्रह वाटिका में शामिल अधिकांश पौधे स्थानीय एवं क्षेत्रीय जलवायु के अनुकूल होते हैं। इससे इनके रखरखाव की आवश्यकता कम होती है तथा पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता एवं अनुकूलन क्षमता बढ़ती है।

पर्यावास एवं खाद्य शृंखला का समर्थन: फाइकस प्रजातियाँ वर्षभर पक्षियों एवं अन्य जीवों को फल उपलब्ध करवाकर महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत का कार्य करती हैं। वहीं, पलाश जैसी पुष्पीय प्रजातियाँ मधुमक्खियों एवं तितलियों जैसे परागणकर्ताओं को आकर्षित कर पारिस्थितिक संतुलन को सुदृढ़ बनाती हैं।

मृदा एवं सूक्ष्म जलवायु विनियमन: दूर्वा एवं कुशा घासें मृदा अपरदन को रोकने तथा मिट्टी की संरचना सुधारने में सहायक होती हैं। वृक्षों का घना आवरण तापमान नियंत्रित कर सूक्ष्म जलवायु को संतुलित बनाए रखने में मदद करता है।

शैक्षिक एवं सामाजिक प्रभाव: नवग्रह वाटिका छात्रों, शोधकर्ताओं एवं समुदाय के लिए एक जीवंत प्रदर्शन इकाई के रूप में कार्य करती है। यह पर्यावरण जागरूकता बढ़ाने के साथ पारंपरिक पारिस्थितिकीय ज्ञान के संरक्षण एवं प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

विदेशी सब्जियों की समन्वित खेती से मिली सफलता

भूपेन्द्र सिंह खड़ायत, मुक्ता नैनवाल, उमा नौलिया और **सी. तिवारी**

उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में खेती आज कई चुनौतियों का सामना कर रही है। वन्य जीवों का बढ़ता जोखिम, जलवायु परिवर्तन, खेती की बढ़ती लागत और रोजगार की तलाश में युवाओं का पलायन कृषि व्यवस्था को लगातार प्रभावित कर रहा है। ऐसे समय में कुछ किसान अपनी मेहनत, नवाचार और दृढ़ संकल्प से पहाड़ी खेती को नई दिशा दे रहे हैं। अल्मोड़ा जिले के प्रगतिशील किसान श्री प्रकाश चन्द्र उपाध्याय ने बंजर भूमि को उपजाऊ बनाकर पारंपरिक खेती, पशुपालन और विदेशी सब्जियों के माध्यम से लाभकारी कृषि मॉडल विकसित किया है। इनकी सफलता यह संदेश देती है कि वैज्ञानिक सोच और निरंतर प्रयासों से पहाड़ों में भी खेती को आत्मनिर्भर और लाभकारी बनाया जा सकता है।

सेवानिवृत्ति के बाद जहां अधिकांश लोग शांत और सुविधाजनक जीवन की तलाश करते हैं, वहीं उत्तराखंड के जिला-अल्मोड़ा अंतर्गत ग्राम-खनूली के निवासी श्री प्रकाश चन्द्र उपाध्याय ने खेती को अपनी नई पहचान बनाने का निर्णय लिया।

वर्ष 2017 में शिक्षक पद से सेवानिवृत्त होने के बाद इन्होंने पहाड़ छोड़ने के बजाय अपनी मिट्टी और गांव से जुड़े रहने का संकल्प लिया। वर्ष 2018 में इन्होंने लगभग 10 एकड़ बंजर भूमि लीज पर लेकर खेती की शुरुआत की।

प्रारंभ में भूमि पथरीली और अनुपजाऊ थी, लेकिन लगातार मेहनत, जुताई और गोबर की खाद के प्रयोग से इन्होंने धीरे-धीरे उसे उपजाऊ खेतों में बदल दिया।

कृषि विज्ञान केंद्र, मटेला, कोसी, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

शुरुआत में इन्होंने गेहूं, धान, मँडुवा और सोयाबीन जैसी पारंपरिक फसलों की खेती की। साथ ही, खेती को टिकाऊ और लाभकारी बनाने के उद्देश्य से 2 गाय और 10

आलू की सफल खेती

बकरियों के साथ पशुपालन भी शुरू किया। पशुपालन से उन्हें खेतों के लिए जैविक खाद के साथ अतिरिक्त आय का स्रोत भी प्राप्त हुआ। वर्तमान में इनके पास लगभग 50 बकरियाँ हैं, जो इनकी आय का महत्वपूर्ण आधार बन चुकी हैं।

कुछ वर्षों बाद इन्होंने नकदी फसलों और सब्जी उत्पादन की ओर कदम बढ़ाया। इन्होंने बंदगोभी, फूलगोभी, मटर, लोबिया, कद्दू, तोरई और लौकी जैसी सब्जियों की खेती शुरू की। इस दौरान जंगली पशुओं से फसलों को भारी नुकसान भी हुआ, लेकिन इन्होंने हार मानने के बजाय खेतों की घेराबंदी कर समस्या का समाधान निकाला। कोरोना काल में बाजार बंद होने के कारण तैयार सब्जियां खेतों में खराब हो गई और उन्हें आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा, फिर भी इन्होंने खेती से अपना विश्वास नहीं खोया।

धीरे-धीरे इनकी मेहनत रंग लाई और इनका संपर्क दिल्ली के व्यापारियों से हुआ। आजादपुर मंडी के व्यापारियों की मांग के अनुसार इन्होंने ब्रोकली, जुकीनी, रेड कैबेज और सलाद जैसी विदेशी सब्जियों की खेती शुरू की। इन फसलों ने इनकी आय में उल्लेखनीय वृद्धि की। वर्तमान में उपाध्याय जी पारंपरिक और विदेशी दोनों प्रकार की सब्जियों की सफल खेती कर रहे हैं। खेती और पशुपालन से उन्हें लगभग 13.74 लाख रुपये की शुद्ध वार्षिक आय प्राप्त हो रही है तथा इन्होंने वर्ष 2027 तक 15-20 लाख रुपये वार्षिक आय का लक्ष्य निर्धारित किया है।

इनके नवाचार, परिश्रम और उत्कृष्ट कार्यों को देखते हुए गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा आयोजित "119वें अखिल भारतीय किसान मेले (13-16 मार्च, 2026)" में इन्हें 'प्रगतिशील कृषक पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। श्री प्रकाश चन्द्र उपाध्याय अपनी सफलता का श्रेय कृषि विज्ञान केंद्र, मटेला (अल्मोड़ा) तथा उद्यान विभाग, अल्मोड़ा से प्राप्त मार्गदर्शन और सहयोग को भी देते हैं।

श्री प्रकाश चन्द्र उपाध्याय का स्पष्ट संदेश है कि पहाड़ों से पलायन ही एकमात्र विकल्प नहीं है। यदि आधुनिक तकनीकों, बाजार आधारित खेती, सही फसलों के चयन और निरंतर मेहनत के साथ कार्य किया जाए, तो पहाड़ों में भी खेती को लाभकारी बनाया जा सकता है। इनकी सफलता की कहानी आज उन युवाओं के लिए प्रेरणा बन चुकी है, जो रोजगार की तलाश में गांव छोड़ने को मजबूर होते हैं। वास्तव में, इनका सफर यह सिद्ध करता है कि दृढ़ इच्छाशक्ति और मेहनत से बंजर जमीन को भी समृद्धि और आत्मनिर्भरता का आधार बनाया जा सकता है। ■

सारणी: फसल एवं अन्य उद्यमों से प्राप्त वार्षिक आय एवं व्यय

फसल/उद्यम	**क्षेत्रफल (एकड़)**	**कुल आय (लाख रुपये में)**
ब्रोकली	1.0	1.50
पकचोई	1.0	0.60
धनिया	0.5	0.20
लौकी	1.0	6.00
तुमड़	1.0	3.00
कद्दू	1.0	6.00
तोरई	0.5	1.80
करेला	0.09	0.10
खीरा	0.09	0.06
आलू	2.0	0.50
सरसों	6.0	1.40
चायनीज गोभी	0.09	0.06
लहसुन	0.09	0.20
पशुपालन	-	0.45
बकरी पालन	-	2.12
कुल आय	**23.99**	
कुल व्यय	**10.25**	
शुद्ध लाभ	**13.74**	

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका

'खेती' जुलाई, 2026 'आजीविका उद्यमिता विशेषांक' के प्रमुख आकर्षण

- ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ता स्वरोजगार एवं सशक्तिकरण
- कृषि व्यवसाय ऊष्मायन केन्द्र से उद्यमिता
- कृषि उपकरण बैंक द्वारा उद्यमिता को बढ़ावा
- बहुआयामी कृषि मॉडल से आत्मनिर्भरता
- मशरूम उत्पादन बना आय का सशक्त माध्यम
- प्राकृतिक खेती बनी उद्यमिता का आधार
- सफल उद्यमिता में एबीआई-द्राक्षा की प्रभावी भूमिका
- मखाना आधारित उद्यमिता से महिला सशक्तिकरण
- आधुनिक खेती से टमाटर उत्पादन में मिली सफलता
- गोबर आधारित प्रसंस्करण से आर्थिक उत्थान
- संरक्षित कृषि प्रणाली से आय वृद्धि
- परंपरागत खेती से उद्यमिता तक की यात्रा

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंधन निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 25843657, www.icar.org.in

फल फसलों की विविधता से पोषण और वृद्धि

एकता सिंह, निखिल मौर्या और **अंकिता यादव**

भारत, जैव विविधता की दृष्टि से विश्व के समृद्ध देशों में से एक है। विविध जलवायु, मृदा एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण देश में अनेक प्रकार की फल प्रजातियाँ पाई जाती हैं। फल फसलें केवल पोषण का स्रोत ही नहीं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था, रोजगार, प्रसंस्करण उद्योग तथा निर्यात आय का भी महत्वपूर्ण आधार हैं। इन फसलों में जैव विविधता से आशय प्रजातियों, किस्मों, जीनोम एवं जर्मप्लाज्म में पाई जाने वाली आनुवंशिक विविधता से है। यही विविधता जलवायु अनुकूलन, रोग-प्रतिरोध, गुणवत्ता सुधार तथा उत्पादन स्थिरता की आधारशिला मानी जाती है। संरक्षण-आधारित दृष्टिकोण अपनाने से फल उत्पादन में अनेक सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं, जिनमें उच्च उपज, बेहतर गुणवत्ता, निर्यात वृद्धि तथा किसानों की आय में सुधार प्रमुख हैं। वर्तमान में आधुनिक कृषि पद्धतियों, शहरीकरण एवं जलवायु परिवर्तन के कारण अनेक पारंपरिक एवं वन्य फल प्रजातियाँ संकट का सामना कर रही हैं। ऐसे में इन मूल्यवान आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण और संवर्धन अत्यंत आवश्यक हो गया है, ताकि भविष्य की पीढ़ियों के लिए पोषण सुरक्षा, कृषि स्थिरता एवं जैव विविधता को सुरक्षित रखा जा सके।

फल केवल स्वाद और पोषण का स्रोत ही नहीं हैं, बल्कि हमारी जैव विविधता, कृषि संस्कृति और किसानों की आजीविका का महत्वपूर्ण आधार भी हैं। बदलती जलवायु और आधुनिक कृषि के दौर में फल फसलों की विविधता का संरक्षण भविष्य की टिकाऊ एवं पोषण-सुरक्षित कृषि के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है।

विभिन्न फल फसलों में पाई जाने वाली किस्मीय विविधता न केवल स्वाद और गुणवत्ता को समृद्ध बनाती है, बल्कि बदलती जलवायु परिस्थितियों में कृषि को अधिक टिकाऊ और लाभकारी बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आचार्य नरेन्द्र कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, अयोध्या

फलों में जैव विविधता का स्वरूप

अमरूद

यह फल जैव विविधता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी विभिन्न किस्में, रंग, स्वाद एवं पोषण गुण इसे आर्थिक तथा पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाते हैं। जैव विविधता संरक्षण एवं सुधार कार्यक्रमों के माध्यम से इसकी उत्पादकता और गुणवत्ता में निरंतर सुधार किया जा रहा है।

अमरूद की प्रमुख किस्मों में इलाहाबाद सफेदा, सरदार (लखनऊ-49), बनारसी सुर्खा, चित्तीदार, अर्का मृदुला, अर्का अमूल्य, श्वेता एवं पंत प्रभात प्रमुख हैं।

इलाहाबाद सफेदा: यह उत्तर प्रदेश की प्रमुख एवं लोकप्रिय किस्म है। इसके वृक्ष सीधे बढ़ने वाले और मजबूत होते हैं, जिनकी ऊँचाई लगभग 5.8 से 6.2 मीटर तक होती है। फल मध्यम आकार, गोल एवं चिकने होते हैं तथा इनका छिलका हल्के पीलेपन लिए सफेद रंग का होता है। फल का गूदा सफेद एवं कम बीजों वाला होता है। इसकी भंडारण क्षमता अच्छी मानी जाती है।

लखनऊ-49: यह अधिक उत्पादन देने वाली लोकप्रिय किस्म है। इसके फल बड़े, गोल-अंडाकार आकार के होते हैं। फल का छिलका पीले रंग का तथा गूदा मुलायम, सफेद एवं कम बीजों वाला होता है। इसकी भंडारण क्षमता भी अच्छी होती है।

चित्तीदार: इस किस्म के वृक्ष लंबे एवं फैली हुई शाखाओं वाले होते हैं। फल अपेक्षाकृत छोटे, गोल से अंडाकार आकार के होते हैं। फल का रंग पीला होता है, जिस पर लाल रंग के धब्बे पाए जाते हैं। गूदा मुलायम, सफेद एवं स्वाद में मीठा होता है। इसकी भंडारण क्षमता अच्छी होती है।

बनारसी सुर्खा: यह कम खटास एवं अधिक मिठास वाली प्रमुख किस्मों में से एक है। इसका वृक्ष मध्यम से ऊँचा तथा चौड़े शीर्ष वाला होता है। फल गोल एवं पीले रंग के होते हैं। इसकी भंडारण क्षमता मध्यम होती है।

स्ट्रॉबेरी

यह एक महत्वपूर्ण फल फसल है, जो शीतोष्ण एवं उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में सफलतापूर्वक उगाई जाती है। यह अच्छी जल निकासी वाली दोमट मिट्टी में बेहतर उत्पादन देती है।

आंवला का जर्मप्लाज्म संरक्षण

विभिन्न क्षेत्रों में इसकी किस्मों का चयन स्थानीय जलवायु एवं बाजार की मांग के अनुसार किया जाता है। स्ट्रॉबेरी की प्रमुख एवं प्रचलित किस्मों में चौंडलर, स्वीट चार्ली, सेल्वा, टियोगा, कैमारोसा, विंटर डॉन तथा फेस्टिवल प्रमुख हैं।

चौंडलर: यह एक उच्च गुणवत्ता वाली मीठी किस्म है, जो आकर्षक रंग एवं उत्कृष्ट स्वाद के लिए प्रसिद्ध है। इसके फल बड़े आकार के होते हैं तथा गूदा एवं छिलका दोनों सुदृढ़ एवं सख्त होते हैं, जिससे इसकी परिवहन एवं भंडारण क्षमता बेहतर रहती है। यह ताजे उपभोग तथा प्रसंस्करण दोनों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। एक फल का औसत वजन लगभग 15-18 ग्राम होता है।

टियोगा: यह एक अगेती किस्म है, जो वायरस के प्रति सहनशील मानी जाती है। इसके फल बड़े तथा सख्त गूदे एवं छिलके वाले होते हैं। यह स्वाद एवं गुणवत्ता की दृष्टि से अच्छी किस्म मानी जाती है। इसमें टी.एस.एस. 12.2 प्रतिशत, अम्लता 0.98 प्रतिशत तथा कुल शर्करा 6.2 प्रतिशत पाई जाती है। एक फल का औसत वजन लगभग 9 ग्राम होता है।

सेल्वा: यह एक तटस्थ किस्म है, जिसमें गैर मौसम फल देने की क्षमता पाई जाती है। इसके फल बड़े, सख्त गूदे एवं मजबूत छिलके वाले होते हैं। फल का आकार शंक्वाकार से चौकोर तक पाया जाता है। यह मिठाई एवं प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त मानी जाती है। एक फल का औसत वजन लगभग 15-18 ग्राम होता है। इसमें कुल शर्करा 11.1 प्रतिशत, अम्लता 1.0 प्रतिशत तथा चीनी 5.5 प्रतिशत पाई जाती है।

फलन अवस्था में स्ट्रॉबेरी के पौष्टिक फल

आंवला

यह एक महत्वपूर्ण औषधीय एवं पोषक फल है, जिसे "धात्री" के नाम से भी जाना जाता है। भारत में इसकी खेती उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात एवं बिहार आदि राज्यों में व्यापक रूप से की जाती है। यह शुष्क एवं अर्ध शुष्क जलवायु में भी अच्छी तरह अनुकूलित हो जाता है। आंवला में पर्याप्त आनुवंशिक एवं किस्मीय विविधता पाई जाती है। इसकी प्रमुख उन्नत एवं प्रचलित किस्मों में एन.ए.-7, एन.ए.-6, एन.ए.-10, कृष्णा, कंचन, चकैया, फ्रांसिस, बनारसी एवं आनंद-1 प्रमुख हैं।

कंचन: यह, चकैया समूह की एक दुर्लभ एवं उच्च फलन क्षमता वाली अगेती किस्म है। इसके फल छोटे से मध्यम आकार के, चपटे एवं कुछ लंबे होते हैं। फल की सतह चिकनी तथा रंग पीला होता है। इसके फल अपेक्षाकृत कम सड़ते हैं, इसलिए यह अचार निर्माण के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

बनारसी: यह एक अगेती किस्म है, जिसका वृक्ष फैलावदार होता है। इसके फल बड़े आकार (लगभग 48.2 ग्राम) के होते हैं। फल की त्वचा चिकनी, पतली एवं अर्धपारदर्शी होती है, जिसका रंग सफेदी-पीले से भूसे-पीले तक होता है। गूदा सफेदी-हरा होता है तथा इसमें फाइबर की मात्रा लगभग 1.4 प्रतिशत पाई जाती है। इसकी भंडारण क्षमता कम होती है।

एन.ए.-9: इस किस्म के फल आकर्षक, मध्यम से बड़े आकार (लगभग 41.6 ग्राम) तथा चपटे आयताकार होते हैं। फल का छिलका पतला एवं चिकना होता है, जिसमें 6-8 स्पष्ट एवं सुदृढ़ खंड पाए जाते हैं। इसमें रेशा (फाइबर) की मात्रा कम (0.9 प्रतिशत) होती है, जबकि एस्कॉर्बिक अम्ल (विटामिन-सी) की मात्रा अत्यधिक (881 मि.ग्रा./100 ग्राम) पाई जाती है। पैक्टिन की मात्रा अधिक होने के कारण यह मुरब्बा, मिठाई, जैम एवं जेली निर्माण के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

शरीफा

यह एक महत्वपूर्ण उष्णकटिबंधीय फल है, जो अपने मीठे स्वाद एवं औषधीय गुणों के लिए प्रसिद्ध है। इसे शुगर एप्पल भी कहा जाता है। सीताफल में पर्याप्त आनुवंशिक एवं किस्मीय विविधता पाई जाती है। इसकी प्रमुख एवं प्रचलित किस्मों में बालानगर, मम्मथ, रेड सीताफल, अर्का सहन, अर्का सीताफल, वॉशिंगटन एवं बारबाडोस प्रमुख हैं।

बालानगर: यह सीताफल की एक उन्नत एवं लोकप्रिय किस्म है, जो बड़े फल, कम बीज तथा उच्च गुणवत्ता के लिए जानी जाती है। इसका वृक्ष मध्यम आकार एवं फैलावदार होता है। फल बड़े, गोल या अंडाकार आकार के होते हैं तथा औसत वजन लगभग 250-400 ग्राम तक होता है। पकने पर फल का रंग हल्का हरा से पीला-हरा हो जाता है। गूदा सफेद, मुलायम एवं अत्यंत मीठा होता है। इस किस्म में बीजों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है।

अर्का सहन: अर्का सहन शरीफा की एक उन्नत संकर (हाइब्रिड) किस्म है, जिसे व्यावसायिक खेती एवं उच्च गुणवत्ता उत्पादन के लिए विकसित किया गया है। इसके फल बड़े, गोल अथवा अंडाकार आकार के होते हैं तथा औसत वजन लगभग 300-500 ग्राम तक होता है। फल में गूदे की मात्रा लगभग 70-80 प्रतिशत तक पाई जाती है। गूदे का रंग सफेद, बनावट मुलायम एवं स्वाद अत्यंत मीठा होता है।

संरक्षण

फल फसलों में जैव विविधता संरक्षण मुख्यत: दो तरीकों से किया जाता है:

- **इन-सीटू संरक्षण:** इस विधि में फल प्रजातियों या किस्मों को उनके प्राकृतिक आवास अथवा उसी क्षेत्र में संरक्षित किया जाता है, जहाँ वे स्वाभाविक रूप से पाई जाती हैं। उदाहरण के रूप में वन्य आम की प्रजातियों का संरक्षण, स्थानीय अमरूद एवं बेर की किस्मों को किसानों के खेतों में बनाए रखना तथा प्राकृतिक वनों में जंगली फल प्रजातियों की सुरक्षा शामिल है।
- **एक्स-सीटू संरक्षण:** इस विधि में फल प्रजातियों या किस्मों को उनके प्राकृतिक स्थान से बाहर नियंत्रित परिस्थितियों में सुरक्षित रखा जाता है। इसके अंतर्गत वनस्पति उद्यानों में दुर्लभ एवं संकटग्रस्त पौधों का संरक्षण, बीज बैंकों में बीजों का दीर्घकालीन भंडारण तथा टिश्यू कल्चर तकनीक द्वारा प्रयोगशाला में पौधों का संवर्धन किया जाता है।

हरी पत्तियों के बीच पनपते पौष्टिक फल

भारत में संरक्षण आधारित सफलताएँ

भारत में फल फसलों की जैव विविधता के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा राष्ट्रीय जीन बैंक के माध्यम से विभिन्न फसलों के बीजों एवं आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (एनबीपीजीआर) भी पौध आनुवंशिक संसाधनों के संग्रह, संरक्षण एवं प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इन प्रयासों के माध्यम से भविष्य के लिए मूल्यवान आनुवंशिक संसाधनों को सुरक्षित रखने में सफलता मिली है।

आम: भारत में आम की विभिन्न देसी किस्मों जैसे दशहरी, लंगड़ा, अल्फांसो एवं अन्य पारंपरिक किस्मों का संरक्षण एवं सुधार किया गया है। उन्नत प्रबंधन तकनीकों एवं गुणवत्तापूर्ण किस्मों के विकास से आम उत्पादन एवं निर्यात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे किसानों की आय में भी सुधार हुआ है।

प्राकृतिक परिवेश में विकसित शरीफा

केला: ऊतक संवर्धन (टिश्यू कल्चर) तकनीक के प्रयोग से गुणवत्तायुक्त एवं रोगमुक्त पौध तैयार करने में महत्वपूर्ण सफलता मिली है। इससे उत्पादन क्षमता बढ़ी है तथा व्यावसायिक खेती को प्रोत्साहन मिला है।

आंवला: उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान जैसे राज्यों में आंवला की उन्नत किस्मों, जैसे एन.ए.-7 एवं एन.ए.-10 के विकास एवं प्रसार से उत्पादन में वृद्धि हुई है। इसके पोषण एवं औषधीय महत्व के कारण घरेलू तथा औद्योगिक मांग भी लगातार बढ़ रही है।

स्ट्रॉबेरी: महाराष्ट्र के महाबलेश्वर क्षेत्र में स्ट्रॉबेरी का बड़े पैमाने पर व्यावसायिक उत्पादन किया जा रहा है। उन्नत किस्मों के संरक्षण एवं संवर्धन के माध्यम से इसकी गुणवत्ता एवं उत्पादन दोनों में सुधार हुआ है, जिससे किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त हो रहा है।

भारत में फल फसलों के संरक्षण, उन्नत किस्मों के विकास तथा आधुनिक तकनीकों के उपयोग से अनेक अन्य फल फसलों में भी सफलताएँ प्राप्त हुई हैं, जो कृषि समृद्धि एवं पोषण सुरक्षा को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। ■

एप्पल बेर की उन्नत खेती से आत्मनिर्भरता

द्वारका[1] और **निशा चढ़ार**[2]

मध्य प्रदेश के दमोह जिले के ग्राम पिपरिया किरण (भैंसा), तहसील हटा की प्रगतिशील महिला कृषक श्रीमती अनुपमा पटेल ने कृषि विज्ञान केन्द्र, दमोह के तकनीकी मार्गदर्शन में एप्पल बेर की उन्नत किस्मों एप्पल बेर ग्रीन, कश्मीरी एवं एप्पल बेर येलो की वैज्ञानिक खेती अपनाकर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। नवीन कृषि तकनीकों एवं उच्च उत्पादकता वाली फसलों को अपनाने की इनकी सोच ने इन्हें क्षेत्र की अग्रणी महिला कृषकों में स्थापित किया है। एक एकड़ क्षेत्र में एप्पल बेर बागवानी की स्थापना पर प्रथम वर्ष में लगभग 50 हजार रुपये की लागत आई, जबकि शुरुआती दो वर्षों में 75 हजार से 90 हजार रुपये तक की आय प्राप्त हुई। वर्तमान में बाग के स्थिर होने के बाद वार्षिक लागत घटकर लगभग 20 से 30 हजार रुपये रह गई है तथा आय बढ़कर 1.50 से 1.65 लाख रुपये प्रति एकड़ प्रतिवर्ष तक पहुँच गई है। चालू वर्ष में इनके बाग से लगभग 42 क्विंटल उत्पादन दर्ज किया गया। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जहाँ पारंपरिक खेती अक्सर सीमित आय का माध्यम मानी जाती है, वहीं दमोह जिले की प्रगतिशील महिला कृषक श्रीमती अनुपमा पटेल ने एप्पल बेर की उन्नत खेती अपनाकर आत्मनिर्भरता और सफलता की नई मिसाल कायम की है।

एप्पल बेर स्वादिष्ट एवं पोषक फल होने के साथ जूस, कैंडी, पाउडर एवं मुरब्बा जैसे मूल्यवर्धित उत्पादों के लिए भी उपयुक्त है, जिससे ग्रामीण स्तर पर स्वरोजगार एवं अतिरिक्त आय के अवसर बढ़ रहे हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जलवायु बेर उत्पादन के लिए अनुकूल होने के कारण यह फसल कम लागत में अधिक लाभ देने वाली सिद्ध हो रही है। श्रीमती अनुपमा पटेल की यह सफलता गाथा विशेष रूप से महिला कृषकों के लिए प्रेरणास्रोत है, जो दर्शाती है कि वैज्ञानिक तकनीक, फसल विविधीकरण एवं उद्यानिकी आधारित खेती अपनाकर कृषि को लाभकारी बनाया जा सकता है।

[1]अतिथि शिक्षक, कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश - 488001, [2]एम.एससी. (बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश - 472001

स्वास्थ्यवर्धक

एप्पल बेर एक अत्यंत पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक फल है। इसमें विटामिन-सी, खनिज तत्व एवं ऊर्जा प्रचुर मात्रा में पाई जाती है, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी मानी जाती है। यह शरीर की कमजोरी दूर करने, पाचन शक्ति बढ़ाने एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत करने में सहायक है। गर्मी के मौसम में बेर से तैयार जूस लू से बचाव में भी उपयोगी माना जाता है।

पारंपरिक खेती से अपेक्षित आय प्राप्त न होने के कारण श्रीमती अनुपमा पटेल ने आयवर्धक बागवानी फसलों की ओर ध्यान दिया। इसी दौरान कृषि विज्ञान केन्द्र, दमोह द्वारा आयोजित प्रशिक्षण एवं तकनीकी परामर्श कार्यक्रमों में भाग लेने पर इन्हें एप्पल बेर की उन्नत किस्मों एवं इसकी व्यावसायिक संभावनाओं की जानकारी प्राप्त हुई। इससे प्रेरित होकर उन्होंने अपने खेत में एक एकड़ क्षेत्र में एप्पल बेर की वैज्ञानिक बागवानी स्थापित करने का निर्णय लिया। इन्होंने एप्पल बेर ग्रीन, एप्पल बेर कश्मीरी एवं एप्पल बेर येलो जैसी उन्नत किस्मों का चयन कर आधुनिक तकनीकों के साथ इनकी खेती प्रारंभ की, जिससे इन्हें उल्लेखनीय उत्पादन एवं बेहतर आय प्राप्त होने लगी।

प्रारंभिक निवेश एवं स्थापना

एप्पल बेर बागवानी की स्थापना के प्रथम वर्ष में पौध सामग्री, गड्ढों की तैयारी, जैविक खाद, सिंचाई व्यवस्था एवं पौध संरक्षण सहित लगभग 50 हजार रुपये प्रति

ग्रामीण स्तर पर स्वरोजगार की दिशा

एकड़ की लागत आई। कृषि विज्ञान केन्द्र, दमोह के विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में पौध रोपण दूरी, खाद एवं पोषण प्रबंधन, सिंचाई, छंटाई तथा पौध संरक्षण की वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाया गया, जिससे बाग की बेहतर वृद्धि एवं उत्पादन सुनिश्चित हुआ।

आय वृद्धि: एप्पल बेर के पौधों ने स्थापना के प्रथम एवं द्वितीय वर्ष से ही फल देना प्रारंभ कर दिया, जिससे आय प्राप्त होने लगी। शुरुआती वर्षों में प्रति एकड़ लगभग 75 हजार से 90 हजार रुपये तक की आय प्राप्त हुई। वर्तमान में बाग के पूर्ण विकसित होने के बाद वार्षिक लागत घटकर लगभग 20 से 30 हजार रुपये प्रति एकड़ रह गई है, जबकि आय बढ़कर 1.50 से 1.65 लाख रुपये प्रति एकड़ प्रतिवर्ष तक पहुँच गई है। चालू वर्ष में लगभग 42 क्विंटल उत्पादन दर्ज किया गया है।

इस प्रकार, एप्पल बेर की वैज्ञानिक बागवानी से श्रीमती अनुपमा पटेल को पारंपरिक खेती की तुलना में कई गुना अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त हो रहा है।

मूल्य संवर्धन: श्रीमती अनुपमा पटेल केवल ताजा फल विक्रय तक सीमित नहीं हैं, बल्कि एप्पल बेर आधारित मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण की दिशा में भी कार्य कर रही हैं। वे बेर जूस, बेर कैंडी, बेर पाउडर एवं बेर मुरब्बा जैसे उत्पाद तैयार कर रही हैं। इन प्रसंस्करित उत्पादों के माध्यम से ग्रामीण स्तर पर स्वरोजगार एवं महिला समूहों के लिए अतिरिक्त आय के नए अवसर विकसित हो रहे हैं।

संभावनाएँ: बुन्देलखण्ड क्षेत्र में देसी बेर की खेती पारंपरिक रूप से की जाती रही है। दमोह जिले की जलवायु एवं मिट्टी एप्पल बेर की उन्नत किस्मों के लिए अत्यंत उपयुक्त पाई गई है। कम पानी की आवश्यकता, कम देखभाल तथा अधिक सहनशीलता के कारण यह फसल सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध हो रही है। श्रीमती अनुपमा पटेल की सफलता से प्रेरित होकर आसपास के अनेक किसान भी एप्पल बेर की उन्नत बागवानी की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

भरपूर फलों से लदा वृक्ष

तकनीकी सहयोग: श्रीमती अनुपमा पटेल की सफलता में कृषि विज्ञान केन्द्र, दमोह का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्हें केन्द्र द्वारा वैज्ञानिक मार्गदर्शन, उन्नत बागवानी तकनीकों तथा पौध प्रबंधन संबंधी परामर्श प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त, उद्यानिकी विभाग, दमोह द्वारा विभिन्न योजनाओं एवं बागवानी अनुदान संबंधी जानकारी उपलब्ध करवाई गई, जिससे बागवानी स्थापना एवं विस्तार में सहायता मिली।

विपणन हेतु तैयार पौष्टिक बेर

ग्राम पिपरिया किरण की प्रगतिशील महिला कृषक श्रीमती अनुपमा पटेल ने एप्पल बेर की उन्नत खेती अपनाकर यह सिद्ध किया है कि सही फसल चयन, वैज्ञानिक मार्गदर्शन एवं निरंतर परिश्रम के माध्यम से सीमित संसाधनों में भी उच्च आय प्राप्त की जा सकती है। इनका एक एकड़ एप्पल बेर बागवानी मॉडल बुन्देलखण्ड क्षेत्र में आयवर्धक, टिकाऊ एवं महिला अनुकूल कृषि का उत्कृष्ट उदाहरण बनकर उभरा है। यह सफलता की कहानी किसानों को बागवानी आधारित फसल विविधीकरण अपनाने एवं आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा प्रदान करती है। ■

सामाजिक प्रभाव

श्रीमती अनुपमा पटेल की इस पहल से क्षेत्र में महिला कृषकों के आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है तथा ग्रामीण परिवारों की आय में स्थिरता आई है। एप्पल बेर बागवानी के माध्यम से पोषण सुरक्षा को बढ़ावा मिला है और क्षेत्र में उद्यानिकी आधारित खेती का विस्तार हो रहा है। साथ ही, मूल्य संवर्धन गतिविधियों के कारण स्थानीय स्तर पर रोजगार के नए अवसर भी विकसित हुए हैं। वर्तमान में श्रीमती अनुपमा पटेल विभिन्न कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अपने अनुभव साझा कर अन्य किसानों, विशेष रूप से महिला कृषकों को प्रेरित कर रही हैं। श्रीमती अनुपमा पटेल का मानना है कि यदि किसान पारंपरिक खेती के साथ फल बागवानी एवं वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाएँ, तो कम भूमि में भी अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। इनके अनुसार एप्पल बेर जैसी फसलें बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जलवायु के लिए अत्यंत उपयुक्त एवं लाभकारी हैं।

टिकाऊ कृषि की आधारशिला हैं महिला कृषक

प्रियंका चौधरी[1], **रवि प्रकाश**[2], **निर्मल पाण्डेय**[3] और **प्रीति उपाध्याय**[4]

कृषि जैव विविधता संरक्षण एवं कृषि-पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखने में ग्रामीण कृषक महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाती हैं। कृषक महिलाएँ परंपरागत बीजों के संरक्षण, फसल विविधीकरण, मिश्रित खेती, जैविक खादों के उपयोग तथा जल एवं मृदा संरक्षण जैसी गतिविधियों के माध्यम से टिकाऊ कृषि को सुदृढ़ बनाती हैं। साथ ही, वे स्थानीय ज्ञान एवं पारंपरिक कृषि प्रणालियों को संरक्षित कर आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह लेख दर्शाता है कि ग्रामीण महिलाएँ केवल कृषि श्रमिक नहीं, बल्कि ज्ञान-संरक्षक, नवाचारक एवं पारिस्थितिकीय संतुलन की सशक्त संरक्षक हैं। इस प्रकार, कृषक महिलाएँ खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, सतत कृषि विकास तथा ग्रामीण समाज की स्थिरता की आधारशिला के रूप में उभरती हैं।

कृषि अर्थव्यवस्था में कृषक महिलाएँ एक महत्वपूर्ण किंतु प्रायः अदृश्य शक्ति के रूप में कार्य करती हैं। वे केवल खेतों में श्रम योगदान तक सीमित नहीं हैं, बल्कि बीज संरक्षण, फसल विविधीकरण, पोषण सुरक्षा, स्वदेशी कृषि ज्ञान तथा कृषि-पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में भी केंद्रीय भूमिका निभाती हैं।

पारंपरिक रूप से महिलाएँ बीज चयन, प्रसंस्करण, भंडारण एवं विनिमय की संरक्षक रही हैं, जिससे स्थानीय किस्मों एवं कृषि जैव विविधता का संरक्षण संभव हो पाता है।

इसके बावजूद, महिला कृषक भूमि स्वामित्व, संसाधनों तक सीमित पहुँच तथा संस्थागत मान्यता के अभाव जैसी चुनौतियों का सामना कर रही हैं। औपचारिक बीज प्रणालियों, कृषि विस्तार सेवाओं एवं बाजार संरचनाओं में इनकी भूमिका को पर्याप्त महत्व नहीं मिल पाता। जबकि विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि महिलाएँ केवल सहायक श्रमिक नहीं, बल्कि कृषि जैव विविधता की संरक्षक एवं सतत कृषि पद्धतियों की संवाहक हैं।

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार बिहार में महिलाएँ कुल कृषि श्रम का लगभग 35.94 प्रतिशत योगदान देती हैं। वास्तव में इनका योगदान इससे कहीं अधिक है, क्योंकि बीज संरक्षण, फसल प्रसंस्करण, फसल-कटाई कार्य एवं पारिवारिक श्रम जैसे कई कार्य आँकड़ों में शामिल नहीं हो पाते। महिलाओं के पास स्थानीय फसल किस्मों, मिश्रित खेती, बीज चयन तथा जंगली खाद्य पौधों से संबंधित समृद्ध पारंपरिक ज्ञान उपलब्ध है, जो जलवायु परिवर्तन एवं कृषि संकट के दौर में कृषि-पारिस्थितिकीय लचीलापन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पश्चिम चंपारण जिले में किए गए एक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि आदिवासी महिलाओं द्वारा सब्जी एवं फल उत्पादन के साथ वर्मीकम्पोस्ट एवं मशरूम उत्पादन अपनाने से कृषि आय में 20 प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई। साथ ही, परिवारों के

[1]माइकोलॉजी एवं पादप रोग विज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, [2]भ्रमणशील पशु चिकित्सा पदाधिकारी, अगिआँव, भोजपुर, बिहार, [3]भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, [4]शाकीय विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

आहार में विविधता और पोषण स्तर में भी सुधार दर्ज किया गया। इस प्रकार की एकीकृत कृषि पद्धतियाँ जैव विविधता संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य सुधार एवं घरेलू खाद्य सुरक्षा को एक साथ मजबूत करती हैं। वास्तव में, बिहार की कृषक महिलाएँ कृषि जैव विविधता, पोषण सुरक्षा एवं टिकाऊ कृषि विकास की सशक्त आधारशिला हैं।

महिलाओं के नेतृत्व में आजीविका, पोषण एवं जैव विविधता आधारित कृषि को सशक्त बनाने में विभिन्न संस्थागत पहलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन सोसाइटी (बीआरएलपीएस) की 'जीविका' पहल के माध्यम से महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को संगठित कर आजीविका विविधीकरण एवं आयवृद्धि को बढ़ावा दिया गया है। बागवानी, गृह उद्यान, पशुपालन एवं गैर-कृषि गतिविधियों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक भागीदारी मजबूत हुई है।

बिहार राज्य बागवानी मिशन के अंतर्गत फल, सब्जी, मसाले एवं पुष्पों की वाणिज्यिक खेती को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। 'मुख्यमंत्री बागवानी मिशन', शीत-शृंखला (कोल्ड स्टोरेज), मशरूम उत्पादन तथा रूफटॉप गार्डनिंग जैसी पहलें किसानों की आय एवं पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ कर रही हैं।

कृषि विज्ञान केंद्र, विशेष रूप से मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, पटना एवं भोजपुर जिलों में, महिलाओं को सब्जी उत्पादन, बीज चयन, कीट-प्रबंधन, पश्च-फसल प्रसंस्करण तथा पोषण उद्यानों से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान कर उनकी तकनीकी क्षमता बढ़ा रहे हैं। वहीं, ए.टी.एम.ए. (कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन अभिकरण) के माध्यम से मौसम आधारित परामर्श, कौशल प्रशिक्षण एवं कृषि-उद्यमिता कार्यक्रमों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जा रही है, जिससे उनकी बाजार उन्मुख निर्णय क्षमता मजबूत हो रही है।

इसके अतिरिक्त, बिहार न्यूट्रिशनल मिशन, राष्ट्रीय पोषण अभियान एवं 'मिशन पोषण 2.0' के अंतर्गत स्थानीय खाद्य उत्पादों के प्रोत्साहन, सुदृढ़ीकृत चावल तथा 'पोषण ट्रैकर' ऐप के माध्यम से कुपोषण, एनीमिया एवं बौनापन जैसी समस्याओं को कम करने के प्रयास किए जा रहे हैं। ये सभी पहलें मिलकर महिलाओं की आर्थिक सशक्तता, पोषण-संवेदी कृषि एवं ग्रामीण-शहरी बाजार संपर्क को समग्र रूप से मजबूत बना रही हैं।

इसके बावजूद, बिहार की कृषक महिलाएँ अनेक संरचनात्मक बाधाओं का सामना कर रही हैं। समस्तीपुर जिले में किए गए एक अध्ययन के अनुसार, 90 प्रतिशत महिलाओं पर घरेलू एवं कृषि कार्यों का दोहरा बोझ है, 82 प्रतिशत मामलों में निर्णय-निर्माण पर पुरुषों का प्रभुत्व बना हुआ है तथा 76 प्रतिशत महिलाओं को ऋण तक पहुँच में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ये परिस्थितियाँ महिलाओं की नवाचार क्षमता को सीमित करती हैं और जैव विविधता आधारित उद्यमों के विकास में गंभीर बाधा उत्पन्न करती हैं।

महिला किसान और संस्थागत समर्थन

महिला किसानों को संस्थागत समर्थन प्रदान करना, उनके पारंपरिक ज्ञान तंत्र को मान्यता देना तथा उत्पादक संसाधनों तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करना केवल लैंगिक समानता का प्रश्न नहीं है, बल्कि बिहार में जैव विविधता संरक्षण, जलवायु अनुकूल कृषि और सतत ग्रामीण विकास को मजबूत करने की रणनीतिक आवश्यकता भी है। बिहार की कृषि व्यवस्था में कृषक महिलाएँ उत्पादन, पोषण सुरक्षा, जैव विविधता संरक्षण तथा पारंपरिक कृषि ज्ञान के संवहन में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं। इसके बावजूद, औपचारिक कृषि प्रणालियों, बीज नेटवर्क, कृषि विस्तार सेवाओं तथा नीति-निर्माण प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी और पहचान अभी भी सीमित बनी हुई है।

कृषि कार्यों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी

भूमि स्वामित्व और आर्थिक चुनौतियाँ

भूमि स्वामित्व की कमी बिहार में महिला किसानों के समक्ष एक प्रमुख संरचनात्मक समस्या बनी हुई है। राज्य में महिलाएँ केवल 13.31 प्रतिशत कृषि भूमि की स्वामी हैं, जिसके कारण उन्हें संस्थागत ऋण, फसल बीमा तथा विभिन्न सरकारी योजनाओं का लाभ सीमित रूप से ही प्राप्त हो पाता है।

भूमि अधिकारों का अभाव न केवल उनकी आर्थिक सुरक्षा को कमजोर करता है, बल्कि दीर्घकालिक जैव विविधता संरक्षण के लिए आवश्यक प्रोत्साहनों को भी प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, समान कृषि कार्य के लिए महिलाओं की मजदूरी पुरुषों की तुलना में लगभग 7.04 प्रतिशत कम पाई गई है, जो कृषि क्षेत्र में विद्यमान लैंगिक आर्थिक असमानताओं को और गहरा करती है।

बीज संरक्षण में भूमिका

बीज संरक्षण, प्रसंस्करण, भंडारण तथा विनिमय में महिलाओं की पारंपरिक भूमिका व्यापक रूप से स्वीकार की गई है। हालांकि बिहार-विशिष्ट अध्ययनों से यह सामने आया है कि राज्य की गेहूँ बीज वितरण प्रणाली "बीज उत्पादन, वितरण और अपनाने की प्रक्रिया में महिला किसानों की संभावनाओं को पर्याप्त महत्व नहीं देती।" प्रमुख चुनौतियों में सूचना तक सीमित पहुँच, कमजोर किसान-प्रतिक्रिया तंत्र तथा संस्थागत समन्वय का अभाव शामिल हैं।

वर्तमान में बिहार में महिलाओं की बीज-संबंधी भूमिकाओं द्वारा सामुदायिक लचीलापन और जैव विविधता संरक्षण पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष प्रभावों का समग्र अध्ययन अभी अपेक्षित है।

जलवायु-स्मार्ट कृषि में अहम भूमिका

बिहार में जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, बाढ़ तथा सूखे जैसी चुनौतियाँ कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र को निरंतर प्रभावित

कर रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में महिला किसानों द्वारा अपनाई जा रही स्वदेशी तकनीकी ज्ञान (आई.टी.के.) आधारित पद्धतियाँ जल संरक्षण, पोषक तत्व प्रबंधन तथा फसल स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण समाधान प्रस्तुत करती हैं।

पारंपरिक ज्ञान और स्थानीय संसाधनों पर आधारित ये उपाय कम लागत वाले होने के साथ-साथ पर्यावरणीय दृष्टि से भी अधिक टिकाऊ माने जाते हैं।

समस्तीपुर एवं वैशाली जिलों की 100 महिला किसानों पर किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि जलवायु-स्मार्ट कृषि पद्धतियों के ज्ञान एवं प्रशिक्षण में वृद्धि से पुरुषों के बाह्य प्रवासन में लगभग 21 प्रतिशत तक कमी आई तथा घरेलू खाद्य सुरक्षा में उल्लेखनीय सुधार हुआ। यह दर्शाता है कि यदि महिलाओं को वैज्ञानिक जानकारी, प्रशिक्षण एवं संसाधनों तक उचित पहुँच मिले, तो वे कृषि आधारित आजीविका को अधिक स्थिर एवं लचीला बना सकती हैं।

क्षमता निर्माण और विस्तार सेवाएं

बिहार-विशिष्ट अध्ययनों में फार्म स्कूलों को सामुदायिक-आधारित क्षमता निर्माण के प्रभावी मॉडल के रूप में पहचाना गया है। इन मॉडलों ने किसानों की कृषि निर्णय-प्रक्रिया में जलवायु संबंधी सूचनाओं के उपयोग को बढ़ावा दिया। एक अन्य अध्ययन के अनुसार, बिहार में तकनीक अपनाने के निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी हरियाणा की तुलना में कम रही, फिर भी प्रशिक्षण, आर्थिक संपन्नता तथा कृषि विस्तार सेवाओं तक बेहतर पहुँच ने जलवायु-स्मार्ट कृषि तकनीकों को अपनाने में सकारात्मक भूमिका निभाई।

पारंपरिक ज्ञान और सतत कृषि की संभावनाएँ

महिला किसान पारंपरिक तकनीकी ज्ञान (आई.टी.के.) आधारित पद्धतियों-जैसे मल्चिंग, फसल चक्र, जैविक पोषक प्रबंधन एवं मिश्रित खेती का उपयोग लंबे समय से करती आ रही हैं। ये तकनीकें मृदा स्वास्थ्य

वैज्ञानिक परामर्श से सशक्तिकरण

बकरीपालन में महिलाओं की अग्रणी भूमिका

संरक्षण, जल उपयोग दक्षता तथा जलवायु जोखिमों को कम करने में सहायक सिद्ध होती हैं। हालांकि ये पद्धतियाँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं, परन्तु बिहार में महिला किसानों द्वारा इनके विशिष्ट उपयोगों एवं प्रभावों पर प्रत्यक्ष वैज्ञानिक प्रमाण अभी सीमित हैं। इसलिए इन नवाचारों का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण एवं शोध अत्यंत आवश्यक है।

पोषण, आजीविका और महिला सशक्तिकरण

ग्रामीण समाज में महिलाएँ ज्ञान, पोषण एवं पारिवारिक खाद्य सुरक्षा की प्रमुख आधारशिला हैं, फिर भी निर्णय-निर्माण, भूमि स्वामित्व तथा ऋण सुविधाओं तक उनकी पहुँच सीमित बनी हुई है। इसके बावजूद वे उद्यानिकी, मशरूम उत्पादन, वर्मी कम्पोस्टिंग तथा जैविक कृषि जैसी गतिविधियों के माध्यम से आय एवं पोषण सुरक्षा को मजबूत कर रही हैं। यदि इन गतिविधियों को बाजार, प्रसंस्करण एवं कृषि विस्तार सेवाओं से प्रभावी रूप से जोड़ा जाए, तो महिला किसानों के लिए नए आर्थिक अवसर विकसित किए जा सकते हैं।

समग्र रूप से देखा जाए तो बिहार की महिला कृषक कृषि-जैव विविधता, कृषि-परिस्थितिकी तथा सतत आजीविका के क्षेत्र में अपार संभावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनका अभी तक पूर्ण रूप से उपयोग नहीं हो पाया है। विभिन्न शोध अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि महिलाएँ बागवानी, पोषण सुरक्षा तथा आय सृजन को प्रभावी ढंग से एकीकृत करने में सक्षम हैं, किन्तु भूमि स्वामित्व, ऋण सुविधाओं तक सीमित पहुँच तथा सामाजिक मानदंडों से जुड़ी संरचनात्मक बाधाएँ उनकी क्षमता और प्रभाव को सीमित कर देती हैं।

बीज प्रबंधन, स्वदेशी तकनीकी ज्ञान (आई.टी.के.) तथा घरेलू कृषि-बजटिंग से जुड़े विमर्श एक साझा तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि कृषक महिलाएँ बिहार की कृषि जैव विविधता, पोषण सुरक्षा और सामुदायिक लचीलेपन की मौन आधारशिला हैं। वे केवल कृषि कार्यों में श्रम योगदान देने वाली सहभागी नहीं हैं, बल्कि पारंपरिक ज्ञान, स्थानीय बीजों, पोषण-संवेदी कृषि प्रणालियों तथा जलवायु-अनुकूल कृषि पद्धतियों की संरक्षक और संवाहक भी हैं।

जैव विविधता का संरक्षण

पर्यावरणीय दृष्टि से भी महिला किसान महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। स्थानीय बीजों, पारंपरिक फसलों एवं जैव विविधता के संरक्षण में सक्रिय योगदान देती हैं तथा जलवायु परिवर्तन के प्रति कृषि समुदायों की अनुकूलन क्षमता को मजबूत करती हैं। इस प्रकार महिलाएँ केवल कृषि श्रमिक नहीं, बल्कि जैव विविधता संरक्षण, सतत कृषि एवं जलवायु अनुकूल ग्रामीण विकास की अग्रणी संवाहक के रूप में उभर रही हैं।

अतः समय की मांग है कि नीति, अनुसंधान एवं कृषि विस्तार प्रणालियाँ महिला किसानों के स्वदेशी ज्ञान, बीज संरक्षण परंपराओं तथा उद्यमिता क्षमता को औपचारिक मान्यता प्रदान करें। साथ ही, भूमि अधिकार, संस्थागत ऋण, प्रशिक्षण, बाजार एवं तकनीकी सेवाओं तक उनकी पहुँच को सुदृढ़ किया जाए। इससे न केवल महिला सशक्तिकरण को गति मिलेगी, बल्कि कृषि जैव विविधता संरक्षण, पोषण सुरक्षा तथा जलवायु अनुकूलन जैसे व्यापक विकासात्मक लक्ष्यों को भी समेकित रूप से प्राप्त किया जा सकेगा। ■

जानकारी

जुलाई-अगस्त के मुख्य बागवानी कार्य

हरे कृष्ण[1], **मंजूनाथ टी गौड़ा**[1], **अरविंद कुमार सिंह**[2], **अनूप प्रताप सिंह**[1] और **शुभम कुमार तिवारी**[1]

भारतीय मानसून केवल एक ऋतु परिवर्तन नहीं, बल्कि कृषि, पर्यावरण, संस्कृति और जनजीवन के पुनर्जीवन का प्रतीक है। जुलाई-अगस्त (सावन-भादो) के माह में होने वाली वर्षा ग्रीष्म ऋतु की तीव्र तपन से झुलसी धरती को शीतलता प्रदान करती है और समस्त जीव-जगत में नवचेतना का संचार करती है। वर्षा की पहली फुहार के साथ ही पेड़-पौधे नई हरियाली से आच्छादित हो उठते हैं, नदियाँ, तालाब और अन्य जलस्रोत पुनर्भरित हो जाते हैं तथा वातावरण में ताजगी और स्फूर्ति का अनुभव होने लगता है। भारतीय संस्कृति और लोकजीवन में भी मानसून का विशेष महत्व है। फलोत्पादन की दृष्टि से जुलाई-अगस्त का समय अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

मानसूनी वर्षा आम, अमरूद, नीबू, आंवला, बेर, अनार, लीची, अंगूर तथा सेब जैसी प्रमुख फल फसलों के लिए आवश्यक नमी उपलब्ध करवाती है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है और मृदा में पर्याप्त आर्द्रता बनी रहती है। यही कारण है कि यह अवधि नए फल बागानों की स्थापना के लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती है। अनुकूल तापमान एवं पर्याप्त नमी पौधों की सफल स्थापना तथा जड़ों के बेहतर विकास में सहायक होती है। साथ ही, कलमबंदी, गूटी बांधना और चश्मा चढ़ाना जैसी कायिक प्रवर्धन तकनीकों की सफलता भी इस मौसम में अधिक रहती है।

मानसून के दौरान पौधों में तीव्र वृद्धि होती है, इसलिए प्रशिक्षण एवं छंटाई का विशेष महत्व होता है। उचित छंटाई से प्रकाश एवं वायु संचार बेहतर होता है, जिससे रोगों का प्रकोप कम होता है और आगामी मौसम में अच्छा पुष्पण एवं फलन प्राप्त होता है। इस समय नाइट्रोजन एवं पोटाशयुक्त उर्वरकों का संतुलित प्रयोग पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देता है। पहाड़ी क्षेत्रों में पलवार (मल्चिंग) तथा अन्य मृदा संरक्षण उपाय नमी संरक्षण और मृदा कटाव रोकने में सहायक सिद्ध होते हैं।

हालांकि, अत्यधिक वर्षा के कारण जलभराव, जड़ गलन, कवकजनित रोगों तथा खरपतवारों की समस्या भी बढ़ सकती है। इसलिए प्रभावी जल निकासी, नियमित निगरानी, समय पर रोग-कीट प्रबंधन तथा खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। इस प्रकार मानसून उत्तर भारत के फल बागानों में पौध स्थापना, पोषण प्रबंधन और भविष्य की उत्पादकता सुनिश्चित करने वाला एक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक काल है।

आम

फल मक्खियों का प्रकोप अप्रैल माह से प्रारम्भ हो जाता है तथा फल परिपक्वता के समय, विशेषकर मई से जुलाई के दौरान, इसकी संख्या सर्वाधिक देखी जाती है। इसके नियंत्रण के लिए गिरे हुए एवं संक्रमित फलों को नियमित रूप से एकत्र कर नष्ट करें। फल पकने से लगभग 45 दिनों पूर्व 10 प्रतिशत गुड़ अथवा केले के घोल में अनुशंसित कीटनाशी मिलाकर चारा तैयार करें तथा इसका 40 मि.ली. प्रति स्थान की दर से लगभग 200 स्थानों पर छिड़काव करें। वैकल्पिक रूप से सीआईएसएच फल मक्खी ट्रैप का उपयोग किया जा सकता है, जो मौसम के अनुसार 60-90 दिनों तक प्रभावी रहता है।

जुलाई माह में मध्यम अवधि में पकने वाली आम की किस्मों की तुड़ाई कर उन्हें शीघ्र बाजार भेजने की व्यवस्था करें। फलों की तुड़ाई प्रातः अथवा सायंकाल करें तथा उन्हें लगभग 10 मि.मी. डंठल सहित तोड़ें, जिससे लेटेक्स का अत्यधिक स्राव न हो। तुड़ाई के तुरंत बाद डिसैपिंग (डंठल से निकलने वाले दूधिया स्राव को अलग करना) अवश्य करें, ताकि फलों की बाहरी गुणवत्ता एवं आकर्षण बना रहे। इसके पश्चात फलों को छायादार स्थान पर रखें अथवा पानी में डुबोकर पूर्व-शीतन (प्री-कूलिंग) करें, जिससे प्रक्षेत्रीय ऊष्मा निकल जाए और फलों की निधानी आयु बढ़ सके।

पैकिंग से पूर्व फलों का आकार एवं भार के अनुसार वर्गीकरण करें। एगमार्क

[1]भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश-221305, [2]केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र, (केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान), वेजलपुर (गोधरा), गुजरात-389340

मानकों के अनुसार आम के फलों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है: ग्रेड 'ए' (100-200 ग्राम), ग्रेड 'बी' (201-350 ग्राम), ग्रेड 'सी' (351-550 ग्राम) तथा ग्रेड 'डी' (551-800 ग्राम)। फलों के एकसमान पकने तथा रोग नियंत्रण हेतु उन्हें 700 पीपीएम ईथरेल एवं 500 पीपीएम कार्बेण्डाजिम के 52° से. गुनगुने घोल में 5 मिनट तक उपचारित करना लाभकारी होता है। बौनी किस्मों की तुड़ाई के लिए सिकेटियर तथा ऊँचे एवं अधिक फैलाव वाले वृक्षों के लिए मैंगो हार्वेस्टर का उपयोग करें।

फलों की पैकिंग बांस की टोकरियों, प्लास्टिक क्रेट्स अथवा कार्टन बक्सों में करें। बांस की टोकरियों में कागज अथवा जूट की तह लगाने से घर्षणजनित क्षति कम होती है। कार्टन बक्सों में पर्याप्त संवातन छिद्र एवं आंतरिक विभाजक होने चाहिए, जिससे परिवहन के दौरान फलों को क्षति न पहुँचे।

आम में कीट प्रबंधन

तना छेदक एवं पत्तीभक्षी कीटों के नियंत्रण के लिए डेल्टामेथ्रिन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। तना छेदक के नियंत्रण हेतु तने के छिद्रों को साफ कर उनमें मैलाथियॉन 50 ईसी (5 मि.ली. प्रति लीटर पानी) के घोल अथवा पेट्रोल में भीगी रूई की बत्ती डालकर छिद्रों को मिट्टी से बंद कर दें। जुलाई के दूसरे पखवाड़े में तुड़ाई उपरांत प्रत्येक फलदार वृक्ष में 500 ग्राम नाइट्रोजन का प्रयोग करें। एन्थ्रेक्नोज (श्यामव्रण) रोग की रोकथाम हेतु 0.125 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स (125 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव करें।

अगस्त माह में पछेती किस्मों की तुड़ाई करें तथा एन्थ्रेक्नोज नियंत्रण हेतु ब्लाइटॉक्स का दूसरा छिड़काव करें। गोंदार्ति रोग की समस्या होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत), बुझा चूना (0.1 प्रतिशत) तथा बोरेक्स (0.4 प्रतिशत) के मिश्रण का छिड़काव करें। तराई क्षेत्रों में शूट गॉल मेकर कीट के नियंत्रण हेतु थायोमेथोक्साम (0.5 ग्राम प्रति लीटर) अथवा डाइमेथोएट (1.5 मि.ली. प्रति लीटर) का छिड़काव लाभकारी होता है।

पर्याप्त वर्षा होने पर मई-जून में तैयार गड्ढों में नए पौधों की रोपाई प्रारम्भ करें। रोपाई संध्या काल अथवा हल्की वर्षा वाले दिन करना अधिक उपयुक्त रहता है। सामान्य बागों में आम की रोपाई 10 × 10 मीटर दूरी पर की जाती है।

सघन बागवानी में आम्रपाली के लिए 2.5 × 2.5 मीटर अथवा 5 × 5 मीटर तथा दशहरी के लिए 3 × 2.5 मीटर दूरी उपयुक्त पाई गई है। पौधों को इस प्रकार लगाएँ कि कलम बंधन स्थल भूमि सतह से ऊपर रहे तथा जड़ों से लगी मिट्टी न टूटे। रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें।

मिठास से भरे आम

उत्तर भारत की अधिकांश प्रमुख आम किस्मों में स्व-अनिषेच्यता पाई जाती है। अत: नए बागों में दो या अधिक उपयुक्त किस्मों का समावेश करना लाभकारी होता है। उदाहरणत: दशहरी के साथ बॉम्बे ग्रीन एवं लंगड़ा तथा चौसा के साथ दशहरी, सफेदा अथवा मलीहाबादी किस्मों का रोपण बेहतर परागण एवं उत्पादन में सहायक होता है। जुलाई-अगस्त का समय विनियर ग्राफ्टिंग के लिए भी उपयुक्त माना जाता है।

आम में म्लानि (विल्ट) रोग के प्रभावी प्रबंधन हेतु रोगग्रस्त एवं समीपवर्ती वृक्षों के जड़ क्षेत्र में अनुशंसित सांद्रता के थायोफेनेट-मिथाइल घोल से मृदा उपचार करें। मानसून प्रारम्भ होने पर सीआईएसएच-ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम, सीआईएसएच-ट्राइकोडर्मा विरिडी अथवा सीआईएसएच-ट्राइकोडर्मा रीसी आधारित जैव फॉर्मुलेशन का प्रयोग लाभकारी रहता है। रोगग्रस्त शाखाओं की छंटाई के बाद कटे हुए भागों पर 5 प्रतिशत कॉपर सल्फेट अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाएँ, जिससे संक्रमण का प्रसार रोका जा सके।

स्कोलाइटिड बीटल के नियंत्रण हेतु वर्षा ऋतु तथा शीतकाल से पूर्व एवं पश्चात प्रत्येक 15 दिनों के अंतराल पर ब्यूवेरिया बेसियाना का छिड़काव करें। अगले वर्ष के लिए मूलवृंत तैयार करने हेतु स्वस्थ फलों की गुठलियों को एकत्र कर पौधशाला में बोएँ। यदि जुलाई में विनियर ग्राफ्टिंग न की जा सके, तो इसे अगस्त माह में अवश्य पूरा कर लें।

अमरूद

जुलाई माह अमरूद बागानों में नई रोपाई, रिक्त स्थानों की पूर्ति तथा गुणवत्तायुक्त पौध तैयार करने के लिए अत्यंत उपयुक्त माना जाता है। गूटी अथवा कलम विधि से तैयार स्वस्थ पौधों को मृदा-गेंद सहित पूर्व-खुदे 45 × 45 × 45 सें.मी. आकार के गड्ढों के मध्य सावधानीपूर्वक रोपित करें। रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें तथा तीसरे दिन पुन: सिंचाई अवश्य करें। इसके बाद मौसम एवं मृदा नमी की स्थिति के अनुसार लगभग 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें।

श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज) रोग के नियंत्रण हेतु फलों पर कार्बेण्डाजिम (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें। तनों एवं पत्तियों की सुरक्षा के लिए बोर्डो मिश्रण (3:3:50) अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) का प्रयोग लाभकारी होता है। पुराने एवं फलदार बागानों में 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करने से पौधों की वृद्धि तथा फल गुणवत्ता में सुधार होता है। सर्दी ऋतु की फसल में बेहतर पुष्पण, फल आकार एवं उत्पादन प्राप्त करने के लिए फूल आने से पूर्व 0.4 प्रतिशत बोरिक अम्ल (बोरिक एसिड) का छिड़काव लाभकारी पाया गया है।

वर्तिकाग्र सड़न की रोकथाम हेतु फलन से पूर्व कार्बेण्डाजिम (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें। कीट प्रबंधन के लिए क्विनालफॉस 25 ईसी (2 मि.ली. प्रति लीटर पानी), मोनोक्रोटोफॉस

(2 मि.ली. प्रति लीटर पानी) अथवा 3 प्रतिशत नीम तेल का 21 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

अगस्त माह में फल मक्खी के प्रभावी प्रबंधन हेतु गिरे हुए एवं संक्रमित फलों को नियमित रूप से एकत्र कर नष्ट करें। साथ ही, प्रति हैक्टर 10 ट्रैप बाग में स्थापित करें। प्रत्येक ट्रैप में 100 मि.ली. मिथाइल यूजेनॉल (0.1 प्रतिशत) एवं मैलाथियॉन (0.1 प्रतिशत) का जलीय घोल उपयोग करें। इससे फल मक्खी का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

तना एवं फल छेदक कीटों के नियंत्रण हेतु प्रभावित भागों तथा कीटों को समय-समय पर हटाकर नष्ट करें। आवश्यकता अनुसार उपयुक्त कीटनाशियों का प्रयोग करें, किंतु तुड़ाई से कम-से-कम 15 दिनों पूर्व किसी भी रसायन का प्रयोग बंद कर देना चाहिए।

सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, लौह, तांबा एवं मैंग्नीज के मिश्रण का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करने से पौधों की वृद्धि तथा फल गुणवत्ता में सुधार होता है। म्लानि (विल्ट) रोग की रोकथाम के लिए बागानों में स्वच्छता बनाए रखें, उचित जल निकासी सुनिश्चित करें तथा नीम खली एवं जैविक खादों का नियमित प्रयोग करें।

ट्राइकोडर्मा युक्त गोबर खाद, एस्परजिलस नाइजर, स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस तथा बैसिलस आधारित जैविक सूक्ष्मजीव रोगजनकों के दमन में सहायक होते हैं। रोपाई से पूर्व पौधों की जड़ों को जैव-नियंत्रक घोल से उपचारित करना लाभकारी रहता है। केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित अंत:जातीय संकर मूलवृंत (सिडियम ग्वायाजावा × सिडियम मोल्ले) म्लानि रोग के प्रति सहनशील पाया गया है।

केला

जुलाई माह में केले के बागानों के समुचित प्रबंधन हेतु अनेक महत्वपूर्ण कार्यों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। सर्वप्रथम पौधों से सूखी, पीली एवं अवांछित पत्तियों को हटाकर बाग को स्वच्छ रखें। जिन पौधों में तनों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाने का कार्य शेष हो, उसे माह के प्रारंभ में ही पूरा कर लें। इससे पौधों को मजबूती मिलती है, जल निकासी बेहतर बनी रहती है तथा जलभराव की समस्या नहीं होती। जिन पौधों में फल लग चुके हों, उन्हें बांस अथवा अन्य उपयुक्त सहारों से समर्थन दें, ताकि तेज हवा एवं वर्षा के दौरान पौधे गिरने अथवा तना टूटने से सुरक्षित रहें। जुलाई माह नया केला बाग स्थापित करने के लिए भी अत्यंत उपयुक्त माना जाता है।

गुणकारी पपीता

केले में रोपाई

रोपाई के लिए तलवारनुमा स्वस्थ अंत:भूस्तारियों (सकर्स) का चयन करें, जो रोगमुक्त मातृ पौधों से प्राप्त किए गए हों। चयनित भूस्तारी 3-5 माह पुराने, समान आकार के तथा स्वस्थ होने चाहिए। नेन्द्रन, रसथाली, पूवन एवं नेय पूवन जैसी अल्पावधि किस्मों के लिए 1-1.5 कि.ग्रा. तथा कर्पूरवल्ली एवं लाल केला जैसी दीर्घावधि किस्मों के लिए 1.5-2.0 कि.ग्रा. वजन वाले भूस्तारी उपयुक्त माने जाते हैं।

यदि सूक्ष्म प्रवर्धित पौधों का उपयोग करना हो, तो 30 सें.मी. लंबे, लगभग 5 सें.मी. मोटाई वाले तथा कम-से-कम पाँच पूर्ण विकसित स्वस्थ पत्तियों वाले द्वितीयक दृढ़ीकृत पौधों का चयन करें। रोपाई से पूर्व भूस्तारियों के सड़े-गले भाग, बाहरी परतें एवं जड़ों को साफ कर देना चाहिए।

फ्यूजेरियम म्लानि रोग से बचाव हेतु भूस्तारियों को 0.2 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम घोल में 15-20 मिनट तक उपचारित करें। इसके बाद उन्हें रात्रि भर छाया में सुखाकर अगले दिन रोपित करें। इसके अतिरिक्त, ट्राइकोडर्मा रीसी आधारित जैव-फॉर्मुलेशन 'आईसीएआर-फ्यूसीकॉन्ट' फ्यूजेरियम म्लानि के प्रबंधन में प्रभावी पाया गया है। विभिन्न परीक्षणों में इसकी खेत स्तर पर लगभग 80-85 प्रतिशत प्रभावशीलता दर्ज की गई है।

इन वैज्ञानिक प्रबंधन उपायों को अपनाकर जुलाई माह में केले के बागानों में पौधों की स्वस्थ वृद्धि, बेहतर स्थापना तथा रोगों से प्रभावी संरक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है।

बेर

जून में पौधों की काट-छांट के बाद यदि नाइट्रोजन किसी कारणवश न दी जा सकी हो तो उसे जुलाई में अवश्य दें। बाग में जल निकास की समुचित व्यवस्था करें। पौधशाला में बीजू पौधे तैयार करने के लिए यदि बुआई न की जा सकी हो तो इसे जुलाई में अवश्य करें। यदि वृक्षों पर चूर्णिल रोग के लक्षण दिखें तो केराथेन (0.1 प्रतिशत) के दो छिड़काव अगस्त में अवश्य करें।

पपीता

जुलाई माह में मैदानी क्षेत्रों में पपीते की पौधशाला तैयार करने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रबंधन उपाय अपनाना आवश्यक होता है। सर्वप्रथम किसी उन्नत एवं स्वस्थ किस्म के बीजों का चयन कर उन्हें उपयुक्त कवकनाशी से उपचारित करें। उपचारित बीजों की बुआई ऊँची तथा अच्छी जल निकासी वाली क्यारियों में करें।

पौधशाला में आर्द्रपतन (डैम्पिंग-ऑफ) रोग की रोकथाम हेतु बुआई सौरीकरण द्वारा उपचारित क्यारियों में करें। बीज अंकुरण के

बाद 0.2 प्रतिशत थीरम घोल का छिड़काव करने से रोग नियंत्रण में सहायता मिलती है।

पुराने पपीता बागों को खरपतवारमुक्त रखें तथा वर्षा ऋतु में जलभराव से बचाव के लिए समुचित जल निकासी व्यवस्था सुनिश्चित करें। तना एवं थाला सड़न रोग की रोकथाम हेतु पौधों के तनों एवं थालों पर 0.3 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स का छिड़काव करें। साथ ही पौधों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाने से उन्हें अतिरिक्त मजबूती प्राप्त होती है।

सफेद मक्खी के प्रबंधन के लिए पीले चिपचिपे प्रपंच (येलो स्टिकी ट्रैप) स्थापित करें। अधिक प्रकोप होने पर इमिडाक्लोप्रिड 200 एसएल का 0.01 प्रतिशत घोल छिड़कें। जैविक प्रबंधन हेतु 3 प्रतिशत नीम तेल अथवा 5 प्रतिशत नीम बीज खली अर्क (एनएसकेई) का प्रयोग लाभकारी होता है। इसके अतिरिक्त, क्रिप्टोलेमस मॉन्ट्रोजिएरी जैसे परभक्षी कीट तथा एनकार्सिया हैटिएरेंसिस जैसे परजीवी कीटों का उपयोग भी सफेद मक्खी के नियंत्रण में प्रभावी पाया गया है।

फल मक्खी के नियंत्रण हेतु पाइरेथ्रम आधारित कीटनाशियों का प्रयोग करें। साथ ही ओपियस कम्पेन्सेटस एवं स्पालैंगिया फिलीपिनेंसिस जैसे प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण एवं उपयोग फल मक्खी के जैविक प्रबंधन में सहायक होता है।

आँवला

जुलाई-अगस्त माह में आँवले के बागानों में रोग एवं कीट प्रबंधन के साथ-साथ पौध प्रवर्धन संबंधी अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं। इस अवधि में रतुआ (रस्ट) रोग का प्रकोप अधिक देखा जाता है। इसके प्रभावी नियंत्रण हेतु 0.4 प्रतिशत घुलनशील गंधक अथवा 0.2 प्रतिशत क्लोरथैलोनिल का छिड़काव जुलाई माह से प्रारंभ कर एक-एक माह के अंतराल पर कुल तीन बार करें।

श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज) रोग के लक्षण अगस्त माह से पत्तियों एवं फलों पर दिखाई देने लगते हैं। इसके प्रबंधन हेतु तुड़ाई से लगभग 15 दिनों पूर्व 0.1 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम का छिड़काव लाभकारी होता है।

पौष्टिक आंवला

इस अवधि में गुठली छेदक कीट का प्रकोप भी बढ़ सकता है। इसके नियंत्रण के लिए स्पिनोसेड 0.25 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। साथ ही बाग में स्वच्छता बनाए रखें तथा संक्रमित फलों एवं शाखाओं को हटाकर नष्ट करें, जिससे रोग एवं कीटों का प्रसार कम किया जा सके।

जुलाई-अगस्त का समय आँवला की पौध तैयार करने एवं प्रवर्धन कार्यों के लिए भी उपयुक्त माना जाता है। इस दौरान बीजों की बुआई की जा सकती है। अंकुरित पौधों को लगभग एक माह बाद क्यारियों में स्थानांतरित करें, जहाँ वे अगले वर्ष जुलाई माह तक प्रवर्धन के लिए तैयार हो जाते हैं।

पैबंदी कलिकायन अथवा विरूपित छल्ला विधि द्वारा प्रवर्धन कार्य इस समय सफलतापूर्वक किया जा सकता है। प्रवर्धन हेतु सांकुर शाखाओं का चयन ऐसे मातृवृक्षों से करें, जो अधिक फल देने वाले तथा कीट एवं रोगों से मुक्त हों। कलिकायन द्वारा तैयार पौधों की रोपाई किस्म के अनुसार लगभग 8-10 मीटर की दूरी पर करें।

पौधों की संतुलित वृद्धि एवं बेहतर विकास के लिए नाइट्रोजन की अनुशंसित मात्रा का आधा भाग जुलाई-अगस्त माह में देना लाभकारी माना जाता है।

खजूर

जुलाई-अगस्त माह खजूर के बागानों में प्रवर्धन, पौध प्रबंधन एवं फल प्रसंस्करण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। यद्यपि

बेल

यदि जून माह में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग पूर्ण न हो पाया हो, तो शुष्क क्षेत्रों में जुलाई-अगस्त के दौरान यह कार्य अवश्य पूरा कर लेना चाहिए। प्रारंभिक अवस्था में प्रत्येक पौधे को प्रति वर्ष 5 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस तथा 50 ग्राम पोटाश दें। वृक्ष की आयु बढ़ने के साथ इन उर्वरकों की मात्रा को क्रमशः बढ़ाते रहें, ताकि 10 वर्ष या उससे अधिक आयु के वृक्षों को लगभग 50 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस तथा 500 ग्राम पोटाश प्राप्त हो सके। ऊसर अथवा क्षारीय भूमि में जस्ते की कमी सामान्यतः देखने को मिलती है। ऐसे पौधों में 250 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति पौधा खाद एवं उर्वरकों के साथ मिलाकर दें अथवा जुलाई माह में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करें। जिन बागों में फलों के फटने की समस्या अधिक हो, वहाँ 100-150 ग्राम बोरेक्स (सुहागा) प्रति वृक्ष खाद एवं उर्वरकों के साथ मिलाना लाभकारी रहता है। जुलाई-अगस्त का समय नए बागों की स्थापना के लिए भी अत्यंत उपयुक्त माना जाता है। रोपण से लगभग एक माह पूर्व 6-8 मीटर की दूरी पर 75-100 सें.मी. आकार के गड्ढे तैयार करें। यदि भूमि में कंकड़ या कठोर परत हो, तो उसे निकाल देना चाहिए। गड्ढों को 20-30 दिनों तक खुला छोड़ने के बाद ऊपरी उपजाऊ मिट्टी में 3-4 टोकरी सड़ी गोबर खाद मिलाकर गड्ढों को भरें। ऊसर भूमि में मृदा सुधार हेतु 20-25 कि.ग्रा. बालू तथा मृदा के पीएच मान के अनुसार 5-8 कि.ग्रा. जिप्सम अथवा पाइराइट मिलाना लाभकारी होता है। गड्ढों को भूमि सतह से लगभग 6-8 इंच ऊँचा भरने से जलभराव की समस्या कम होती है तथा पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है।

नाशपाती, आड़ू, खुबानी और आलूबुखारा

नाशपाती के बीजू पौधों पर भेंट कलम जुलाई में चढ़ानी चाहिए। इसी माह आड़ू, खुबानी और आलूबुखारा आदि के फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। कज्जली धब्बों की रोकथाम के लिए नाशपाती एवं अन्य फलों में डाइथेन जेड-78 (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। आड़ू, खुबानी व आलूबुखारा में भूरा सड़न रोग की रोकथाम के लिए बाविस्टिन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। अगस्त में नाशपाती के फलों को तोड़कर भेजने की व्यवस्था करें एवं फल सड़न रोग की रोकथाम के लिए ब्लाइटॉक्स (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें।

खजूर

खजूर का प्रवर्धन बीज द्वारा भी किया जा सकता है, परंतु इसके एकलिंगी स्वभाव के कारण बीज से तैयार पौधों में नर एवं मादा पौधों का अनुपात लगभग 50:50 रहता है। परिणामस्वरूप फलन में विलंब तथा उत्पादन में असमानता देखी जाती है। इसलिए व्यावसायिक स्तर पर उत्तम गुणवत्ता वाले मादा मातृवृक्षों से अंत:भूस्तारियों (सकर्स) द्वारा प्रवर्धन अधिक उपयुक्त माना जाता है।

इस अवधि में मातृवृक्ष से निकले भूस्तारियों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाकर उनमें जड़ विकास को प्रोत्साहित किया जाता है। सामान्यत: अगले वर्ष तक ये भूस्तारी मातृवृक्ष से पृथक करने योग्य हो जाते हैं। भूस्तारियों को अलग करने से एक-दो दिन पूर्व खेत में सिंचाई करना लाभकारी रहता है। पृथक्करण से पहले भूस्तारी की पत्तियों को शीर्ष से लगभग 30 सें.मी. ऊपर काट दें तथा शेष पत्तियों को रस्सी से बाँध दें। इसके बाद आसपास की मिट्टी हटाकर भूस्तारी को मातृवृक्ष से जुड़े स्थान से सावधानीपूर्वक काटकर अलग करें।

पूर्व-तैयार गड्ढों में 8 × 8 मीटर की दूरी पर 8-10 कि.ग्रा. भार वाले स्वस्थ भूस्तारियों की रोपाई करें। इस द्विमाही अवधि में खजूर के फलों की तुड़ाई भी की जाती है। वर्षा प्रारम्भ होने पर अधिक आर्द्रता के कारण फल पूर्ण रूप से पक नहीं पाते, इसलिए उन्हें डोका अथवा प्रारंभिक पकाव अवस्था में तोड़ लेना चाहिए। वातावरण में नमी अधिक होने से तुड़ाई के बाद फलों में फफूंद लगने की संभावना बढ़ जाती है, अत: उन्हें शीघ्र प्रसंस्करण हेतु भेजना आवश्यक है।

डाली पर लदे अनार

छुहारा तैयार करने के लिए पूर्ण डोका अवस्था के फलों को अच्छी तरह धोकर 5-10 मिनट तक गर्म पानी में उबालें। इसके बाद फलों को धूप में अथवा 40-45 डिग्री सेल्सियस तापमान वाले ड्रायर में 80-120 घंटे तक सुखाएं, जिससे अच्छी गुणवत्ता का छुहारा तैयार किया जा सके।

अनार

जुलाई-अगस्त माह अनार के बागानों में रोपण, प्रवर्धन, पोषण प्रबंधन तथा रोग-कीट नियंत्रण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इस अवधि में नए पौधों की रोपाई करें तथा रोपण के तुरंत बाद हल्की सिंचाई

प्रवर्धन

अनार के प्रवर्धन हेतु जुलाई-अगस्त का समय गूटी (एयर लेयरिंग) एवं कटिंग विधि के लिए उपयुक्त माना जाता है। गूटी बाँधने के लिए एक वर्ष पुरानी, पेंसिल के समान मोटी, स्वस्थ, ओजस्वी तथा 45-60 सें.मी. लंबी शाखा का चयन करें। शाखा पर किसी कलिका के नीचे लगभग 3 सें.मी. चौड़ाई में छाल को गोलाकार रूप से पूर्णत: हटाकर उस स्थान पर 10,000 पीपीएम आईबीए का लेप लगाएं। इसके बाद नमीयुक्त स्फेगनम मॉस लपेटकर पॉलीथीन शीट से ढक दें तथा सुतली से बाँध दें। जब पॉलीथीन के भीतर जड़ें दिखाई देने लगें, तब शाखा को काटकर क्यारी अथवा पॉलीबैग में रोपित करें।

अवश्य करें, जिससे पौधों की स्थापना अच्छी प्रकार हो सके।

मृग बहार प्रबंधन हेतु जुलाई माह में प्रति पौधा गोबर की सड़ी खाद, फॉस्फोरस की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन एवं पोटाश की आधी मात्रा दें। खाद एवं उर्वरकों को पौधे की छत्रक के नीचे चारों ओर 8-10 सें.मी. गहरी नालियाँ बनाकर देना लाभकारी होता है।

तेलिया रोग से प्रभावित क्षेत्रों में मृग बहार लेना उचित नहीं माना जाता। अन्य क्षेत्रों में जुलाई से अगस्त तक अनुशंसित रोगनाशियों के साथ सैलिसिलिक अम्ल, बोरॉन एवं कैल्शियम का नियमित छिड़काव रोग प्रबंधन में सहायक होता है।

माहूँ कीट के प्रबंधन हेतु पीले चिपचिपे ट्रैप का उपयोग करें। अधिक प्रकोप होने पर डाइमेथोएट 25 ईसी अथवा मिथाइल डेमेटॉन 30 ईसी का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। जुलाई माह में स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का छिड़काव भी लाभकारी पाया गया है।

अनार में फल फटना, विशेषकर शुष्क क्षेत्रों में, एक प्रमुख समस्या है। इसके प्रबंधन हेतु नियमित सिंचाई बनाए रखें तथा जिब्रेलिक अम्ल 15 पीपीएम एवं बोरॉन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

अगस्त माह में हस्त बहार प्रबंधन हेतु पौधों की सिंचाई रोक दें तथा आवश्यकतानुसार इथरेल का प्रयोग करें। साथ ही गोबर की खाद, नीम खली, फॉस्फोरस एवं पोटाश की अनुशंसित मात्रा पौधों के जड़ क्षेत्र में 8-10 सें.मी. गहरी नालियों में डालें।

कटहल

जुलाई में तैयार फलों को तोड़कर बाजार भेजने की समुचित व्यवस्था करें। बागों में समुचित जल निकास का प्रबंधन होना चाहिए। नए बाग लगाने का कार्य भी इसी माह प्रारंभ कर दें। अगस्त में नर्सरी तैयार करने के लिए बीजों को फलों से निकाल कर पौधशाला में बोएं। गूटी द्वारा पौधे तैयार करने का भी यही उत्तम समय है।

लोकाट

जुलाई में काट-छांट का कार्य समाप्त कर लेना चाहिए। वृक्षों के नीचे की जमीन साफ कर बाग को खरपतवार रहित रखें। अगस्त में गूटी बांधने का कार्य समाप्त कर लें। इसी माह नए बाग लगाने का कार्य भी कर सकते हैं।

अंगूर

जुलाई माह में मध्यम एवं देर से पकने वाली अंगूर की किस्मों की तुड़ाई के बाद फलों को शीघ्र बाजार भेजने की व्यवस्था करें। वर्षा ऋतु में फलों के फटने एवं सड़न की समस्या अधिक देखने को मिलती है। इसके प्रबंधन हेतु 0.3 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स का छिड़काव करना लाभकारी होता है। फलों को चिड़ियों एवं बर्रों से होने वाली क्षति से बचाने के लिए उपयुक्त सुरक्षात्मक उपाय अपनाएं। चिड़ियों की रोकथाम हेतु बाग में चमकीली रिबन अथवा परावर्तक पट्टियाँ लगाएं तथा फल गुच्छों को हरी थैलियों से ढक दें। बर्रों के छत्तों को समय-समय पर नष्ट करते रहें, जिससे फलों को होने वाली क्षति कम की जा सके। तुड़ाई के उपरांत पौधों में आवश्यक खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें, ताकि उनकी पुनर्वृद्धि अच्छी हो तथा आगामी मौसम में बेहतर फलन प्राप्त हो सके। अगस्त माह में एन्थ्रेक्नोज (श्यामव्रण) रोग का प्रकोप बढ़ने की आशंका रहती है। इसके प्रभावी नियंत्रण हेतु समय रहते 0.2 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल का छिड़काव करें।

रसीले अंगूर

नीबूवर्गीय फल

जुलाई माह में नीबू (लेमन) एवं लाइम के फल पककर तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। अत: फलों की सावधानीपूर्वक तुड़ाई कर उन्हें शीघ्र बाजार भेजने की व्यवस्था करें। इस अवधि में नए बागों की स्थापना भी की जा सकती है। रोपाई के लिए अच्छी जल निकासी वाली भूमि का चयन करें तथा वर्षा ऋतु में जलभराव से बचाव हेतु समुचित निकास व्यवस्था सुनिश्चित करें। यदि जुलाई माह में रोपाई का कार्य पूर्ण न हो सके, तो इसे अगस्त माह में अवश्य पूरा कर लें।

कैंकर रोग के प्रबंधन हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (250 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) एवं नीम खली (5 कि.ग्रा. प्रति 100 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव लाभकारी होता है। पर्णसुरंगी कीट (लीफ माइनर) के नियंत्रण के लिए पौधशाला तथा नए पौधों पर स्पिनोसेड 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

फलों का तुड़ाई-पूर्व गिरना नीबूवर्गीय फसलों की एक गंभीर समस्या है। इसके नियंत्रण हेतु अगस्त माह में 10 पीपीएम 2,4-डी (1 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव करें।

नीबू एवं लाइम के वृक्षों में जस्ता, मैग्नीशियम तथा बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी सामान्यत: देखी जाती है। इसकी पूर्ति हेतु जिंक सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट, बोरिक अम्ल तथा बुझा हुआ चूना (प्रत्येक 1 कि.ग्रा. प्रति 450 लीटर पानी) के संयुक्त

सीताफल

जुलाई माह में अच्छी किस्म के कलमी पौधों को बागों में रोपित करें तथा सिंचाई की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित करें। अगस्त माह में खरपतवारों की नियमित निराई-गुड़ाई कर उनका नियंत्रण करें। इसी अवधि में पलवार (मल्च) लगाने की व्यवस्था भी करें, जिससे मृदा में नमी का संरक्षण बना रहे। मूलवृंत से निकलने वाली पार्श्व शाखाओं को समय-समय पर हटाते रहें। पौधों को उचित आकार देने तथा मजबूत ढांचा विकसित करने के लिए निचली शाखाओं की 2-3 फीट ऊँचाई तक छंटाई करें।

घोल का पर्णीय छिड़काव करें। इस घोल में 5 कि.ग्रा. यूरिया मिलाने से नाइट्रोजन की कमी की पूर्ति भी प्रभावी रूप से हो जाती है।

पौधों की संतुलित वृद्धि एवं नियमित फलन बनाए रखने के लिए अनुशंसित पोषण प्रबंधन कार्यक्रम का पालन करें तथा आवश्यकता अनुसार नाइट्रोजन की अगली खुराक निर्धारित समय पर दें।

सेब

वर्षा ऋतु में बागानों में जल निकासी की समुचित व्यवस्था बनाए रखें तथा अगेती पकने वाली किस्मों के फलों की तुड़ाई कर उन्हें आकर्षक पैकिंग के साथ बाजार भेजने की व्यवस्था करें। कज्जली धब्बा रोग के प्रकोप की स्थिति में डाइथेन-जेड-78 का 0.2 प्रतिशत घोल छिड़कना लाभकारी होता है।

तना कैंकर रोग दिखाई देने पर संक्रमित शाखाओं को कुछ स्वस्थ भाग सहित काटकर नष्ट कर दें तथा प्रभावित भाग अथवा पूरे वृक्ष पर बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें। इस अवधि में नए पौधे तैयार करने हेतु कलम बाँधने का कार्य भी किया जा सकता है।

अगस्त माह में डिलिशियस समूह की किस्में परिपक्व हो जाती हैं। अतः फलों की सावधानीपूर्वक तुड़ाई कर उन्हें अच्छी एवं आकर्षक पैकिंग के साथ बाजार भेजें। फलों के तुड़ाई-पूर्व झड़ने की समस्या से बचाव हेतु अगस्त माह में नेफ्थेलीन एसिटिक अम्ल (एनएए) का 20 पीपीएम (2 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) की दर से छिड़काव करें।

रुईदार माहूँ (वूली एफिड) के प्रभावी प्रबंधन हेतु परजीवी ततैया एफ़ेलिनस माली का संरक्षण एवं उपयोग लाभकारी पाया गया है। साथ ही लेडीबर्ड बीटल जैसे परभक्षी कीटों का संरक्षण भी आवश्यक है। अधिक प्रकोप होने पर डाइमेथोएट 30 ईसी (0.06 प्रतिशत) अथवा मिथाइल डेमेटॉन 25 ईसी (0.025 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

जड़ क्षेत्र में कीट की उपस्थिति होने पर तुड़ाई के बाद पौधों के थालों में क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी से मृदा उपचार करें। सैन जोस स्केल कीट के जैविक नियंत्रण हेतु एनकार्सिया परनीशियोसी तथा एफाइटिस प्रोकेलिया जैसे परजीवी कीटों का प्रयोग प्रभावी पाया गया है।

स्ट्रॉबेरी में पुष्पण

स्ट्रॉबेरी

जुलाई-अगस्त माह में पहाड़ी क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की रोपाई सफलतापूर्वक की जा सकती है। रोपाई से पूर्व खेत की अच्छी प्रकार जुताई कर उसमें पर्याप्त मात्रा में सड़ी गोबर की खाद मिलाएं तथा 6 × 1 × 0.15 मीटर आकार की क्यारियाँ तैयार करें। पौधों की रोपाई किस्म एवं प्रबंधन प्रणाली के अनुसार 15 × 15 सें.मी., 15 × 30 सें.मी. अथवा 30 × 30 सें.मी. की दूरी पर करें। यदि वर्षा पर्याप्त न हो, तो क्यारियों में सिंचाई की समुचित व्यवस्था बनाए रखें, जिससे पौधों की स्थापना एवं प्रारंभिक वृद्धि प्रभावित न हो। सितंबर माह में नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा फलों को मिट्टी के सीधे संपर्क से बचाने के लिए पलवार (मल्च) का प्रयोग लाभकारी रहता है।

इसी के साथ जुलाई-अगस्त माह में फल बागानों में किए जाने वाले प्रमुख कृषि एवं प्रबंधन कार्यों की चर्चा समाप्त होती है। समय पर अपनाए गए वैज्ञानिक प्रबंधन उपाय स्वस्थ बाग, उच्च उत्पादन तथा बेहतर आर्थिक लाभ सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आगामी द्विमाही (सितंबर-अक्टूबर) भी फलोत्पादन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहेगी। इस अवधि में केला, स्ट्रॉबेरी एवं पपीता के नए बागों की स्थापना के साथ-साथ लीची, अनार, चीकू, अंगूर, सेब एवं आड़ू में उर्वरक प्रबंधन, पुष्पण प्रबंधन तथा कीट एवं रोग नियंत्रण से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए जाएंगे। इसके अतिरिक्त, बेर एवं लोकाट जैसी फसलों में पुष्पण एवं फलन प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होगा, जिससे बेहतर उत्पादन एवं गुणवत्तापूर्ण फल प्राप्त किए जा सकें।

इन सभी विषयों से संबंधित विस्तृत, वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक जानकारी आपकी पत्रिका **'फल-फूल'** के आगामी द्विमासिक अंक में प्रस्तुत की जाएगी। अतः पत्रिका से निरंतर जुड़े रहें, आधुनिक बागवानी तकनीकों को अपनाएँ तथा अपने बागों को अधिक उत्पादक, स्वस्थ एवं लाभकारी बनाएं। ■

लीची

जुलाई माह में लीची बागानों की समुचित देखभाल हेतु वृक्षों के नीचे की भूमि को स्वच्छ एवं खरपतवार मुक्त रखना तथा जल निकासी की उचित व्यवस्था बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। इस अवधि में नए बागों की स्थापना एवं गूटी (एयर लेयरिंग) द्वारा पौध तैयार करने का कार्य सफलतापूर्वक किया जा सकता है। पौधों की स्वस्थ वृद्धि एवं बेहतर विकास के लिए जुलाई माह में खाद एवं उर्वरकों का संतुलित प्रयोग भी करें। यदि जुलाई में गूटी बाँधने का कार्य पूर्ण न हो सके, तो इसे अगस्त माह में अवश्य पूरा कर लें। साथ ही बागों में नियमित निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों का नियंत्रण करते रहें। पुराने बागानों में तना छेदक कीट का प्रकोप दिखाई देने पर अगस्त माह में तनों के छिद्रों एवं अपशिष्ट जालों को साफ करें तथा सुराखों में पेट्रोल अथवा मोनोक्रोटोफॉस में भीगी रुई के फाहे भरकर इन्हें गीली मिट्टी से बंद कर दें, जिससे कीट का प्रभावी नियंत्रण किया जा सके। लीची माइट के प्रबंधन हेतु तुड़ाई के तुरंत बाद तथा नई कोंपलों के निकलने से पूर्व संक्रमित टहनियों एवं प्ररोहों की छंटाई कर उन्हें नष्ट कर दें। इसके उपरांत जुलाई माह में 15 दिनों के अंतराल पर क्लोरफेनापायर 10 ईसी अथवा प्रोपार्गाइट 57 ईसी का 3 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से दो बार छिड़काव करें। गूटी विधि द्वारा तैयार पौधों को इस दौरान सावधानीपूर्वक पौधशाला में रोपित करें, जिससे स्वस्थ एवं गुणवत्तायुक्त पौध तैयार हो सके।

केले के छिलकों से तैयार जैव प्लास्टिक, पर्यावरण संरक्षण में कारगर

प्लास्टिक प्रदूषण आज वैश्विक स्तर पर गंभीर पर्यावरणीय संकट बन चुका है। पारंपरिक प्लास्टिक को नष्ट होने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं, जिससे मृदा, जल स्रोतों और समुद्री जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे समय में वैज्ञानिक पर्यावरण अनुकूल विकल्पों की खोज में जुटे हैं। इसी दिशा में मेघालय के वैज्ञानिकों ने केले के छिलकों से जैव प्लास्टिक (बायोप्लास्टिक) विकसित कर एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है। यह नवाचार न केवल प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने में सहायक हो सकता है, बल्कि कृषि एवं घरेलू अपशिष्ट के बेहतर उपयोग का भी उदाहरण प्रस्तुत करता है।

शिलांग स्थित सेंट एडमंड्स कॉलेज के वैज्ञानिकों द्वारा विकसित यह जैव प्लास्टिक केले के छिलकों से तैयार किया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार सामान्य प्लास्टिक को गलने में कई दशक या सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं, जबकि यह नया जैव प्लास्टिक मृदा में दबाने पर कुछ ही दिनों में टूटना शुरू कर देता है।

इस जैव प्लास्टिक को तैयार करने के लिए सबसे पहले केले के छिलकों को एकत्रित कर उबाला गया और फिर इन्हें सुखाया गया। इसके बाद छिलकों को पीसकर एक चिकना पेस्ट तैयार किया गया। इस पेस्ट में सुरक्षित रसायनों तथा ग्लिसरॉल को मिलाकर एक समान मिश्रण बनाया गया। बाद में इस मिश्रण को पतली परत के रूप में फैलाकर सुखाया गया, जिससे एक लचीली जैव प्लास्टिक शीट तैयार हुई। यह प्रक्रिया दर्शाती है कि सामान्यत: अनुपयोगी समझे जाने वाले जैविक कचरे से भी उपयोगी उत्पाद विकसित किए जा सकते हैं।

इस तकनीक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कचरे का पुन: उपयोग किया जाता है। घरों, होटलों और मंडियों से प्रतिदिन बड़ी मात्रा में केले के छिलके निकलते हैं, जिन्हें आमतौर पर फेंक दिया जाता है। वैज्ञानिकों ने इन्हीं छिलकों को संसाधन में बदलकर मूल्य संवर्धन का नया मॉडल प्रस्तुत किया है। इससे अपशिष्ट प्रबंधन की समस्या कम होने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण को भी बढ़ावा मिलेगा।

शोधकर्ताओं द्वारा किए गए परीक्षणों में महत्वपूर्ण परिणाम सामने आए। मृदा में दबाने के बाद लगभग 15 दिनों में इस जैव प्लास्टिक में टूट-फूट शुरू हो गई। अध्ययन में पाया गया कि मृदा में मौजूद सूक्ष्मजीव

और छोटे जीवाणु इसे अपना आहार बनाना शुरू कर देते हैं।

परीक्षण के दौरान इसका वजन 27 प्रतिशत से अधिक कम हो गया, जो इसकी जैव अपघटन क्षमता को दर्शाता है। इसके विपरीत सामान्य प्लास्टिक वर्षों तक मृदा में पड़ा रहता है और प्रदूषण बढ़ाता है।

यह जैव प्लास्टिक पर्यावरण के लिए सुरक्षित माना जा रहा है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि इससे मृदा की उर्वरता प्रभावित नहीं होती और यह प्राकृतिक चक्र का हिस्सा बन जाता है। यही कारण है कि इसे पारंपरिक प्लास्टिक के संभावित विकल्प के रूप में देखा जा रहा है।

शुष्क क्षेत्रों की नई पहचान बन रहा ड्रैगन फ्रूट

भारतीय कृषि में फसल विविधीकरण और जलवायु अनुकूल खेती की आवश्यकता लगातार बढ़ रही है। ऐसे समय में ड्रैगन फ्रूट (कमलम) किसानों के लिए एक लाभकारी विकल्प बनकर उभरा है। कुछ वर्ष पहले तक यह फल केवल बड़े शहरों के सुपरमार्केट की आयातित फल श्रेणी में दिखाई देता था, लेकिन आज यह भारत के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में किसानों की आय बढ़ाने वाली महत्वपूर्ण बागवानी फसल बन चुका है।

कृषि मंत्रालय की विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार भारत में ड्रैगन फ्रूट की खेती तेजी

से विस्तार कर रही है। कुछ वर्षों पहले तक इसकी खेती लगभग 5,300 हैक्टर क्षेत्र में सीमित थी, जो बढ़कर 14,500 हैक्टर से अधिक हो गई है। इसी प्रकार इसका उत्पादन भी उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। जहाँ पहले उत्पादन लगभग 21,220 मीट्रिक टन था, वहीं अब यह बढ़कर 53,720 मीट्रिक टन तक पहुँच गया है। यह वृद्धि दर्शाती है कि किसान इस नई फसल को तेजी से अपना रहे हैं।

ड्रैगन फ्रूट की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण इसकी जलवायु सहनशीलता है। यह फसल 40-45 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान को सहन कर सकती है। जहाँ अनेक पारंपरिक फसलें भीषण गर्मी और पानी की कमी के कारण प्रभावित हो जाती हैं, वहीं ड्रैगन फ्रूट अपेक्षाकृत कम सिंचाई में भी अच्छा उत्पादन देता है। इसकी यही विशेषता इसे शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बनाती है। जलवायु परिवर्तन और घटते जल संसाधनों के दौर में यह फसल किसानों के लिए सुरक्षित विकल्प के रूप में देखी जा रही है। भारत में गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे राज्यों के साथ-साथ दक्षिण भारत के कई क्षेत्रों में इसकी खेती तेजी से बढ़ रही है। विशेष रूप से आंध्र प्रदेश ड्रैगन फ्रूट उत्पादन का प्रमुख केंद्र बनकर उभरा है। राज्य सरकारों और कृषि संस्थानों द्वारा किसानों को तकनीकी मार्गदर्शन तथा पौध सामग्री उपलब्ध कराने से भी इसका विस्तार हुआ है।

ड्रैगन फ्रूट केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि पोषण की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण फल है। इसमें प्रचुर मात्रा में फाइबर, विटामिन-सी और एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं।

ड्रैगन फ्रूट की बाजार मांग लगातार बढ़ रही है। इसका उपयोग ताजे फल के अलावा जूस, जैम, जेली, आइसक्रीम और विभिन्न प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में किया जा रहा है। इससे किसानों को मूल्य संवर्धन और बेहतर लाभ प्राप्त हो रहा है।

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 79 वर्षों से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **'अगले माह के कृषि कार्यकलाप'** तथा 'कृषि खबरें, देश विदेश की' जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्य:

एक प्रति : 50 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपये

संपर्क सूत्र:

प्रभारी, व्यवसाय एकक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष : 011—25843657, ईमेल : businessuniticar@gmail.com

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स विबा प्रेस प्रा. लि., सी-66/3, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली 110 020 से मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा